ओ३म्

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

जुलाई २०१६

Date of Printing = 05-07-16
प्रकाशन दिनांक= 05-07-16

वर्ष ४५ : अङ्क ८
दयानन्दाब्द : १९२
विक्रम-संवत् : आषाढ़-बैसाख, २०७३
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,११७

संस्थापक : **स्व० ला० दीपचन्द आर्य**
प्रकाशक व
सम्पादक : धर्मपाल आर्य
सह सम्पादक : ओम प्रकाश शास्त्री
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)

४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०५२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

एक प्रति ५.०० रु० वार्षिक शुल्क ५०) रुपये
आजीवन सदस्यता ५००) रुपये
विदेश में २०००) रुपये

इस लेख में

- मेरी ढाई शंका १२
- वेदोपदेश ३
- न्याय दर्शन का..... ४
- बेनकाब होती धर्मनिरपेक्षता ७
- परमात्मा को..... १०
- हाय! दिनकर जी..... १२
- शिकागो अमेरिका १८
- ऋषि दयानन्द..... २२

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण ३००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) ५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

मेरी ढाई शंका!!

(राजीव चौधरी।)

शंका दो हो या तीन किन्तु यह ढाई शंका कैसे? जितनी उत्सुकता यह जानने की आप लोगों की होगी, उतनी ही मेरी भी थी। यह कोई लघुकथा नहीं, बल्कि एक जीता-जागता सत्य है, जिसने एक मुस्लिम विद्वान् को निरुत्तर कर दिया था। वाकया जनवरी २०१६ विश्व पुस्तक मेले का था। देश- विदेश, से आये पुस्तक प्रेमी धार्मिक, सामाजिक, स्वास्थ्य और साहित्य आदि पर लिखी पुस्तकें खरीद रहे थे। किन्तु इन सबके बीच पुस्तकों की आड़ में कुछ सम्प्रदाय धर्मान्तरण का कुचक्र भी चला रहे थे। एक चर्चित इस्लामिक स्टाल पर कुछेक लोगों की भीड़ देखकर मैं भी पहुँच गया। पता चला कि कुरान-ए-शरीफ की प्रति लोगों को मुफ्त बाँटी जा रही थी। शांति प्रेम और आपसी मेल-जोल को इस्लाम का संदेश बताया जा रहा था। खैर! जिज्ञासा वश मैंने भी मुफ्त में कुरान पाने को उनका दिया आवेदन फार्म भरने की ठानी, जिसमें वो नाम-पता और मोबाइल नम्बर लिखवा रहे थे, ताकि बाद में लोगों से सम्पर्क साधा जा सके। यकायक एक सज्जन अपनी धर्मपत्नी जी के साथ स्टाल में पधारे। सामान्य अभिवादन के पश्चात उन्होंने मुस्लिम विद्वान् से कहा कि मैं अपनी धर्मपत्नी के साथ इस्लाम स्वीकार करना चाहता हूँ...

यह सुन मुस्लिम बन्धु के चेहरे पर प्रसन्नता की अनूठी आभा दिखाई दी। मुस्लिम धर्मगुरु ने अपने दोनों हाथ खोलकर कहा कि आपका स्वागत है। लेकिन उन सज्जन ने कहा इस्लाम स्वीकार करने से पहले मेरी ढाई शंका है, आपको उनका निवारण करना होगा। यदि आप उनका निवारण कर पाए, तो ही मैं इस्लाम स्वीकार कर सकता हूँ !! मुस्लिम विद्वान् ने शंकित से भाव से उनकी ओर देखते हुए प्रश्न किया- ''महोदय शंका या तो दो होंगी या तीन ये ढाई शंका का क्या तुक है?'

सज्जन ने अपने मुस्कुराते चेहरे से कहा- '' जब मैं शंका रखूँगा, आप खुद समझ जायेंगे यदि आप तैयार हों, तो मैं अपनी पहली शंका आपके सामने रखूँ?'' मुस्लिम विद्वान् ने कहा कि जी रखिए।

सज्जन - मेरी पहली शंका है कि सभी इस्लामिक बिरादरी के मुल्कों में जहाँ मुस्लिमों की संख्या ५० फीसदी से ज्यादा है मसलन बहुसंख्यक है, उनमें एक भी देश में समाजवाद नहीं है, लोकतंत्र नहीं है, वहाँ अन्य धर्मों में आस्था रखने वाले लोग सुरक्षित नहीं हैं, जिस क्षेत्र में मुस्लिम बहुसंख्यक होते हैं, कट्टर इस्लामिक शासन की माँग होने लगती है, मतलब उदारवाद नहीं रहता। लोगों से स्वतंत्रता छीन सी ली जाती है। आप इसका कारण स्पष्ट करें। मैं इस्लाम स्वीकार कर लूँगा। मुस्लिम विद्वान् के चेहरे पर इस एक शंका ने हजारों शंका खड़ी कर दी थीं। फिर भी उसने हिम्मत कर कहा कि दूसरी शंका प्रकट करें।

सज्जन - मेरी दूसरी शंका है, पूरे विश्व में यदि वैश्विक आतंक पर नजर डालें, तो इस्लामिक आतंक की भागीदारी ९५ फीसदी के लगभग है। हर एक मरने या मारने वाला आतंकी मुस्लिम ही क्यों होता है? अब ऐसे में यदि मैंने इस्लाम स्वीकार किया, तो आप मुझे कौन सा मुसलमान बनाओगे? जो हर रोज मस्जिद के धमाके में मर जाता है, तो कभी आतंकियों का शिकार हो जाता है, तो कभी जरा सी चूक होने पर इस्लामिक कानून के तहत दंड भोगने को मजबूर होता है, जहाँ फैसला मौलानाओं के द्वारा होता है। या फिर वो मुसलमान जो हर रोज बम धमाके करके मानवता की हत्या कर देता है, इस्लाम के नाम पर मासूमों को खून

शेष पृष्ठ ९ पर

ओ३म्

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश १. अग्नि (ईश्वर) - सर्वज्ञ, त्रिकालज्ञ, ज्ञानस्वरूप, सबसे महान, सुखवर्धक अग्निहोत्र आदि का उपदेश करने वालाा है।

२. अग्नि (भौतिक) अग्निहोत्र नामक यज्ञ को प्राप्त कराने वाला, प्रकाश गुण वाला, महान कार्यो का साधक, चलते समय मार्ग का दर्शक है।

परमेष्ठी प्रजापतिः ऋषिः। अग्निः = ईश्वरः भौतिकश्वा देवता।

निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः।।

अथाग्निशब्देनोभावार्थावुपदिश्येते।।

अब अग्नि शब्द से ईश्वर और भौतिक अग्नि अर्थो का उपदेश किया जाता है।।

ओ३म् वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तꣳसमिधीमहि।

अग्ने बृहन्तमध्वरे।। यजु० 2।4।।

पदार्थः **(वीतिहोत्रम्)** वीतयो विज्ञापिता होत्राख्या यज्ञ येनेश्वरेण। यद्वा वीतयः प्राप्तिहेतवो होत्राख्या यज्ञक्रिया भवन्ति यस्मात्तं परमेश्वरं भौतिकं वा। वी गतिव्याप्तिप्रजनकान्त्यसनखादनेषु। इत्यस्य रूपम् **(त्वा)** त्वां तं वा। अत्र पक्षे व्यत्ययः **(कवे)** सर्वज्ञ क्रान्तप्रज्ञ, कविं क्रान्तिदर्शनं भौतिकं वा **(द्युमन्तम्)** द्यौर्बहुप्रकाशो विद्यते यस्मिँस्तम्। अत्र भूम्न्यर्थे मतुप्। **(सम)** सम्यगर्थे **(इधीमहि)** प्रकाशयेमहि। अत्र बहुलं छन्दसीति श्नमो लुक् **(अग्ने)** ज्ञानस्वरूपेश्वर प्राप्तिहेतुं भौतिकं वा **(बृहन्तम्)** सर्वेभ्यो महान्तं सुखवर्धकमीश्वरं बृहतां कार्य्याणां साधकं भौतिकं वा **(अध्वरे)** मित्रभावेऽहिंसनीये यज्ञे वा।। अयं मन्त्रः श० ब्रा० १/३/४/६//

सपदार्थान्वयः हे कवे! सर्वज्ञ क्रान्तप्रज्ञ! अग्ने! (जगदीश्वर) ज्ञानस्वरूपेश्वर! (वयमध्वरे) मित्रभावे (बृहन्तं) सर्वेभ्यो महान्तं सुखवर्धकमीश्वरं (द्युमन्तं) द्यौर्बहुप्रकाशो विद्यते यस्मिँस्तं (वीतिहोत्रं) वीतयो विज्ञापिता होत्राऽऽख्या यज्ञा येनेश्वरेण तं परमेश्वरं (त्वा)= (त्वां समिधीमहि) सम्यक् प्रकाशयेमहि। इत्येकः।।

(वयमध्वरे) अहिंसनीये यज्ञो (वीतिहोत्रं) वीतयः प्राप्तिहेतवो होत्राख्या यज्ञक्रिया भवन्ति यस्मान्तं भौतिकं (द्युमन्तं) द्यौर्बहुप्रकाशो विद्यते यस्मिँस्तं (बृहन्तं) बृहतां कार्य्याणां साधकं भौतिकं (कवे) (कविं) क्रान्तदर्शनं भौतिकं (त्वा) (तम्) (अग्ने) (भौतिकमग्निं) प्राप्तिहेतुं भौतिकं (समिधीमहि) सम्यक् प्रकाशयेमहि।। इति द्वितीयः।।

भाषार्थ : हे (कवे!) सर्वज्ञ त्रिकालज्ञ! (अग्ने!) ज्ञानस्वरूप-परमेश्वर! हम (अध्वरे) मित्रता से रहने के लिए (बृहन्तम्) सबसे महान् तथा सुखों के बढ़ाने वाले (द्युमन्तम्) अत्यन्त प्रकाश वाले (वीतिहोत्रम्) अग्निहोत्र आदि यज्ञों के बतलाने वाले (त्वा) आप परमेश्वर को (समिधीमहि) हृदय में प्रदीप्त करें।। यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ है।

हम लोग (अध्वरे) हिंसा से रहित यज्ञ में (वीतिहोत्रम्) सुख प्राप्ति की हेतु अग्निहोत्र आदि यज्ञ क्रियाएँ जिससे सिद्ध होती हैं, उस भौतिक अग्नि को (द्युमन्तम्) बहुत कार्यो के साधक (कवे) क्रान्तदर्शी कवि रूप भौतिक (त्वा) उस (अग्ने) प्राप्ति के हेतु अग्नि को (समिधीमहि) अच्छे प्रकार प्रकाशित करें।। यह इस मन्त्र का द्वितीय अर्थ हुआ।

(हे.... अग्ने = जगदीश्वर! वयं (त्वा)= त्वां समिधीमहि)

भावार्थः अत्र श्लेषालङ्कारः। यावन्ति क्रियासाधनानि क्रियया साध्यानि च वस्तूनि सन्ति, तानि सर्वाणीश्वरेणैव रचयित्वा ध्रियन्ते। मनुष्यैस्तेषां सकाशाद् गुणज्ञान क्रियाभ्यां बहव उपकाराः संग्राह्याः।।

भावार्थ : इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है। जितने भी क्रिया के साधन तथा क्रिया से साध्य पदार्थ हैं, उन सबको ईश्वर ने ही रच कर धारण किया है। मनुष्य उनसे गुणगान और क्रिया के द्वारा बहुत से उपकारों को ग्रहण करें।

❑❑

न्याय दर्शन का वात्स्यायन-भाष्य

(उत्तरा नेरूर्कर, मो०:- ९८४५० ५८३१०)

ऋषि गौतम प्रणीत न्यायदर्शन भारत के प्राचीन छः दर्शनों में से एक है, जिसकी विषय-वस्तु सत्य का निर्धारण है। उसका प्राचीनतम प्रामाणिक भाष्य वात्स्यायन का उपलब्ध है। उसी के आधार पर नव्य-न्याय विकसित हुआ और इतना लोकप्रिय हुआ कि अब तो गौतम के सूत्रों को देखने वाले कम ही लोग हैं। इसी वर्ष के मार्च माह में मुझे राजस्थान विश्वविद्यालय के दर्शन शास्त्र विभाग के उच्च अध्ययन केन्द्र से निमन्त्रण मिला कि मैं वहाँ जाकर अपना एक शोधपत्र प्रस्तुत करूँ। यह मेरे लिए प्रसन्नता का विषय तो था ही, परन्तु इस संगोष्ठी में भाग लेकर, मुझे नैयायिकों के सामने अपने कुछ विशेष विचार प्रस्तुत करने का भी अवसर मिला, जो विचार मुख्य विचारधारा से कुछ भिन्न हैं। मैंने वात्स्यायन के भाष्य पर एक संशय प्रस्तुत किया, जिसका सम्बन्ध सम्पूर्ण न्यायदर्शन से है, क्योंकि वह बहुत ही मौलिक है। मुझे कोई विशेष प्रतिक्रिया तो नहीं प्राप्त हुई...। उसी पत्र का एक अंश इस लेख में दे रही हूँ। आशा है, पाठकगण अवश्य अपने विचारों से मुझे अवगत कराएंगे।

न्याय कहता है कि किसी विषय पर अपने मत को सिद्ध करने के लिए प्रतिद्वन्द्वियों को वाद करना चाहिए। यही अनन्तरकाल में शास्त्रार्थ कहाने लगा। अपने मत को प्रस्तुत करने के लिए पञ्चावयवों का आलम्बन करना चाहिए। वे पञ्चावयव इस प्रकार हैं-

१.) जो सिद्ध करना है, अर्थात् साध्य, उसको एक वाक्य में प्रकट करना, **प्रतिज्ञा**[१] पहला अवयव है। इसको अंग्रजी में Hypothesis कहते हैं।

२.) दूसरा अवयव **हेतु**[२] है, जो कि साध्य को साधता है एक उदाहरण के साधर्म्य या वैधर्म्य द्वारा।

३.) यह **उदाहरण**[३] अगला अवयव है। उस उदाहरण में एक ऐसा दृष्टान्त होता है, जो कि साध्य का सधर्मी या विधर्मी होता है। **दृष्टान्त**[४] वह कहा गया है कि जिस विषय में लौकिक (=सामान्य) परीक्षकों का मतभेद न हो, अर्थात् विषय इतना स्पष्ट हो कि न्याय से अनभिज्ञ जन भी उस विषय में कोई सन्देह न रखते हों। साध्य से उसके साधर्म्य या वैधर्म्य के आधार पर, वह दृष्टान्त 'उदाहरण' कहलाता है और हेतु में इस साधर्म्य या वैधर्म्य को प्रकट किया जाता है।

४.) हेतु से किस प्रकार साध्य सिद्ध होता है, उदाहरण के समान या विपरीत होने के कारण, यह 'तथा' या 'न तथा' कहकर उपसंहार किया जाता है। इसे **उपनय**[५] कहते हैं।

५.) अन्तिम अवयव है **निगमन**[६], जिसमें हेतु के साथ-साथ प्रतिज्ञा को पुनः दोहराया जाता है, यह बताने के लिए ''इस हेतु से यह मेरा मत है''। अंग्रेजी में यह Q.E.D statement कहलाता है।

एक उदाहरण से ये सभी स्पष्ट हो जायेंगे। सो, मैं वात्स्यायन का ही उदाहरण उद्धृत करती हूँ-

अनित्यः शब्द इति प्रतिज्ञा। उत्पत्तिधर्मकत्वादिति हेतुः। उत्पत्तिधर्मकं स्थाल्यादिद्रव्यमनित्यमित्युदाहरणम् । तथा च उत्पत्तिधर्मकः शब्द इत्युपनयः। तस्मादुत्पत्तिधर्मकत्वादनित्यः शब्द इति निगमनम्। वैधर्म्योक्तेऽपि अनित्यः शब्दः। उत्पत्तिधर्मकत्वात्। अनुत्पत्तिधर्मकमात्मादिद्रव्यं नित्यं दृष्ट्म्। न च तथानुत्पत्तिधर्मकः शब्दः। किं तर्हि? उत्पत्तिधर्मकः शब्दः तस्मादुत्पत्तिधर्मकत्वादनित्यः शब्द इति।। १।१।३६ वा० भा०।।

अर्थात्, साधर्म्य पक्ष में-

प्रतिज्ञा : शब्द अनित्य है।

हेतु : क्योंकि वह उत्पत्तिधर्मक है।

---

[१] साध्यनिर्देशः प्रतिज्ञा ।।१।१।३३।।

[२] उदाहरणसाधर्म्यात् साध्यसाधनं हेतुः।
तथा वैधर्म्यात् ।।१।१।३४-३५।।

[३] साध्यसाधर्म्यात् तद्धर्मभावी दृष्टान्त उदाहरणम्।
तद्विपर्याद्वा विपरीतम्।।१।१।३६-३७।।

[४] लौकिकपरीक्षकाणां यस्मिन्नर्थे बुद्धिसाम्यं
स दृष्टान्तः ।।१।१।२५।।

[५] उदाहरणापेक्षस्तथेत्युपसंहारो न तथेति वा
साध्यस्योपनयः ।।१।१।३८।।

[६] हेत्वपदेशात् प्रतिज्ञायाः पुनर्ववचनं निगमनम् ।।१।१।३६।।

उदाहरण : उत्पत्तिधर्मक थाली आदि द्रव्य अनित्य हैं।

उपनय : वैसे ही शब्द भी उत्पत्तिधर्मक है।

निगमन : इसलिए उत्पत्तिधर्मक होने के कारण, शब्द अनित्य है।

या, वैधर्म्य पक्ष में-

प्रतिज्ञा : शब्द अनित्य है।

हेतु : क्योंकि वह उत्पत्तिधर्मक है।

उदाहरण : अनुत्पत्तिधर्मक आत्मा आदि द्रव्य नित्य देखे जाते हैं।

उपनय : शब्द वैसा अनुत्पत्तिधर्मक होने के कारण, शब्द अनित्य है।

इन पञ्चावयवों को आगे समझाते हुए, वात्स्यायन कहते हैं-

सम्भवस्तावत् शब्दविषया प्रतिज्ञा। आप्तोपदेशस्य प्रत्यक्ष अनुमानाभ्यां प्रतिसन्धानात्। अनृषेश्च स्वातन्त्र्य अनुपपत्तेः। अनुमानं हेतुः। उदाहरणे सादृश्यप्रतिपत्तेः। तच्चोदाहरणभाष्ये व्याख्यातम्। प्रत्यक्षविषयमुदाहरणं दृष्टेनादृष्टसिद्धेः। उपमानमुपनयस्तथेत्युपसंहारात् न तथेति च उपमानधर्मप्रतिषेधे विपरीतधर्म-उपसंहारसिद्धेः। सर्वेषामेकार्थप्रतिपत्तौ सामर्थ्यप्रदर्शनं निगमनमिति।।१।१।३९ वा० भा०।।

अर्थात् (मुख्यांश) -

प्रतिज्ञा शब्द प्रमाण होता है, क्योंकि आप्त लोगों का उपदेश प्रत्यक्ष और अनुमान पर आधारित होता है (और प्रतिज्ञा उनका उपदेश है) और जो ऋषि नहीं होते हैं, उनके वाक्यों में जो स्वातन्त्र्य (=प्रमाणों का अभाव) होता है, वह प्रतिज्ञा में नहीं पाया जाता।

हेतु अनुमान प्रमाण होता है, क्योंकि उसमें उदाहरण से सादृश्य दिखाया जाता है।

उदाहरण प्रत्यक्ष प्रमाण होता है, क्योंकि उसमें दृष्ट से अदृष्ट की सिद्धि होती है।

उपनय उपमान प्रमाण होता है, क्योंकि उसमें 'तथा' या 'न तथा' से उपसंहार करके साधर्म्य या वैधर्म्य कहा जाता है।

निगमन में सब अवयवों से साध्य की प्रतिपत्ति का सामर्थ्य प्रदर्शित किया जाता है।

इस प्रकार वात्स्यायन के अनुसार, पहले चार अवयव स्वयं एक-एक प्रमाण हैं। यह बहुत ही विचित्र विचार है, क्योंकि गौतम ने तो सभी प्रमाण हेतु माने हैं, जिनसे साध्य साधा जा सके! अगर इन अवयवों को इस प्रकार समझा जाए, तो तर्क करना तो असम्भवप्राय ही हो जायेगा, क्योंकि तर्क - जो कि अज्ञात विषय पर ऊहा करना होता है- उसमें प्रायः केवल प्रतिज्ञा, हेतु और उदाहरण ही होते हैं, जैसे कि स्वयं न्यायदर्शन के दूसरे, तीसरे और चौथे अध्याय में पाया जाता है। वात्स्यायन के मत में उपनय के भी प्रमाण होने से, उसके बिना कोई भी मत पूर्णतया प्रस्तुत करना असम्भव है!

यही नहीं, इस मत को मानने से, प्रश्नों की झड़ी उपस्थित हो जाती है। उनमें से कुछ ये हैं-

१.) यदि प्रतिज्ञा शब्द प्रमाण है, तो उसपर चर्चा करने की आवश्यकता ही क्या है?

२.) और यदि प्रत्येक शब्द प्रमाण अन्य प्रमाणों से प्रमाणित किया जा सकता है, तो शब्द प्रमाण को प्रमाण की श्रेणी में रखा ही क्यों जाए?

३.) यदि अनुमान प्रमाण प्रतिज्ञा और उदाहरण के साधर्म्य को बताता है, तो उस कार्य-कारण सम्बन्ध का क्या हुआ जो कि गौतम ने पूर्ववत्, शेषवत् और सामान्यतोदृष्ट में सूत्रित किया था? क्योंकि कार्य-कारण सम्बन्ध में साधर्म्य-वैधर्म्य की कोई आवश्यकता नहीं है। मेघ और वर्षा में साधर्म्य, या बीज और वृक्ष में कोई साधर्म्य-वैधर्म्य हो, ऐसा कोई नियम नहीं है।

मेरा मानना है कि, क्योकि नव्य न्याय ही आजकल अधिक प्रचलित है और नव्य न्याय वात्स्यायन के भाष्य पर आधारित है, इसलिए सब लोग गौतम के सूत्रों को देखते ही नहीं हैं। वात्स्यायन के अनुयायियों को 'व्याप्ति' पदार्थ बनाना पड़ा, जो शब्द न तो गौतमीय सूत्रों, न वात्स्यायन के भाष्य में कहीं भी पाया जाता है। यह व्याप्ति कार्य-कारण सम्बन्ध को उस प्रकार न समझ कर, बडी क्लिष्टता से वही बात कहता है। जैसे अग्नि धूम में व्याप्त होने से, धूम से अग्नि का अनुमान किया जा सकता है। नहीं, अग्नि धूम में व्याप्त नहीं है, अग्नि धूम का कारण है!! इस कारण पूरा शास्त्र ही इतना क्लिष्ट हो गया कि आज कोई भी इसका प्रयोग करके कुछ भी प्रमाणित करने में असमर्थ है...

४.) यदि उदाहरण में दृष्ट से अदृष्ट की प्रतिपत्ति होती है, तो क्या वह अनुमान प्रमाण नहीं होना चाहिए? वह प्रत्यक्ष प्रमाण कैसे हुआ? क्या प्रत्यक्ष प्रमाण से

दृष्ट से अदृष्ट की प्रतिपत्ति की जाती है? गौतम ने तो ऐसा कहीं भी नहीं कहा!

५.) इन अवयवों मे सिद्धान्त कहाँ है? यदि हम सिद्ध पदार्थों को नहीं अवयवों में हेतु-रूप नहीं ले पाएंगे, तो उनसे अन्य पदार्थों को कैसे सिद्ध करेंगे, जिस प्रकार ज्यामिति में त्रिकोण के कोणों का योग १८०° सिद्ध करने के बाद, हम उससे अनेकों निष्कर्ष निकालते जाते हैं?

६.) यदि उपनय उपमान प्रमाण है, तो क्या हमें सदा ही एक उपमा ढूँढनी पड़ेगी, जिसके सहारे से हम कुछ भी प्रमाणित कर सकें? आदि आदि।

किसी भी न्याय के छात्र ने देखा होगा कि आजकल के न्याय के सभी उदाहरणें में केवल उपमा का ही सहारा लिया जाता है, जिस प्रकार ऊपर शब्द के अनित्यत्व के वाद में है। वास्तव में गौतम कहीं भी इस प्रकार की उपमा नहीं देते। इसी कारण नव्य-नैयायिक और वात्स्यायन के भाष्य के अनुयायी गौतम के न्यायशास्त्र में दिए किसी भी तर्क में कोई भी प्रमाण या सिद्धान्त देख ही नहीं पाते!

चलिए, हम देखते हैं। शब्द की अनित्यता का यही प्रकरण गौतम ने भी दिया है, जहाँ सूत्र है-

प्रागच्चारणादनपुलब्धेरावरणाद्यनुपलब्धेश्च।।२।२।१८।।

अर्थात् उच्चारण के पूर्व अनुपलब्ध होने के कारण, और (पूर्वावस्था में) आवरण उपलब्ध न होने के कारण (शब्द अनित्य है)।

यह पूरा तर्क है। यहाँ अवयव इस प्रकार हैं।

प्रतिज्ञा-शब्द अनित्य है (यह पूर्व सूत्रों से अध्याहृत है)।

प्रथम हेतु-शब्द उच्चारण के पूर्व उपलब्ध नहीं है।

दूसरा सम्बद्ध हेतु- तब कोई आवरण भी उपलब्ध नहीं है।

तो क्या यहाँ उदाहरण भी नहीं है? यदि वात्स्यायन के अनुसार हम परखें, तो यहाँ कोई और ऐसा धर्मी नहीं है जो कि अनित्य हो और उच्चारण के पूर्व उपलब्ध न हो, जिसे हम उदाहरण मान सकें। इसी प्रकार अनित्यता और आवरणहीन भी कोई अन्य पदार्थ नहीं है। तो वात्स्यायन के अनुसार यह तर्क अपूर्ण है।

अब गौतम के सूत्रों के अनुसार परखते हैं। शब्द उच्चारण से पूर्व उपलब्ध नहीं होता - क्या इसमें लौकिक परीक्षकों की सम्मति है? हां, अवश्य है। यह सभी का साधारण अनुभव है। इसलिए यह दृष्टान्त की श्रेणी में आता है। फिर इसमें साध्य का धर्म कहाँ है, जिससे यह उदाहरण कहलाया जाए? सो, **उच्चारण** ही शब्द के तद्धर्मभावी है। इसलिए वह ही उदाहरण है। शब्द तो अन्य प्रकार के भी होते हैं, जैसे घण्टे का शब्द, नदी का शब्द, आदि। उनमें से एक है उच्चारण, जिसको कि उदाहरण के रूप में हेतु प्रस्तुत कर रहा है। इसी प्रकार आवरण भी शब्द को अव्यक्त करने का एक प्रकार है। स्वयं हेतु- शब्द उच्चारण के पूर्व उपलब्ध नहीं होता - प्रत्यक्ष प्रमाण है, न कि अनुमान प्रमाण। तथापि वह अनुमान प्रमाण भी हो सकता था, क्योंकि कोई भी प्रमाण या सिद्धान्त हेतु हो सकते हैं। उच्चारण से पूर्व शब्द का अभाव है, इसलिए वह अनित्य है, अर्थात् उच्चारण कारण है और शब्द उसका कार्य, और कार्य सदा अनित्य होता है- यहाँ निहित रूप से शेषवत् अनुमान का प्रयोग करके प्रतिज्ञा सिद्ध की गई है।

वात्स्यायन के कथनानुसार यदि हेतु होता- शब्द उच्चारण के पूर्व उपलब्ध नहीं है, जैसे 'अ' के उच्चारण के पूर्व, तो वह जैसे किसी बच्चे को समझाया जा रहा हो, ऐसा लगता है, विद्वानों क्या, सामान्य जनों को भी उच्चारण के उदाहरण की आवश्यकता नहीं। इसी प्रकार उपर्युक्त पञ्चावयव में थाली का उदाहरण बड़ा अर्थहीन लगता है! वास्तव में हेतु यही है कि जिसकी उत्पत्ति होती है, वह कार्य होता है, इसलिए अनित्य होता है। उत्पत्ति कहाँ हो रही है, वह वास्तविक हेतु है, न कि उत्पत्ति से अनित्यता का सम्बन्ध। वह तो स्पष्ट ही है। शब्द उत्पन्न होता है कि नहीं- यही तो प्रश्न है! उसी को उदाहरण की अपेक्षा है। उसी का उदाहरण गौतम ने दिया है।

उपर्युक्त से हम समझ सकते हैं कि द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ अध्यायों में गौतम के दिए तर्कों को आज तक न्याय की भाषा में क्यों नहीं समझा गया है, और क्यों नैयायिक आजकल कुछ भी नया प्रमाणित करने में असमर्थ हैं। **'वह्निमान् पर्वतः'** के आगे यदि हमें जाना है, तो हमें गौतम के सूत्रों को सही रूप में समझना पड़ेगा।

❑❑

बेनकाब होती धर्मनिरपेक्षता

--(धर्मपाल आर्य)

पिछले महीने (जून) में एक विषय अखबारों और दूरदर्शन में कई दिनों तक चर्चा का केन्द्रबिन्दु बना तथा अनायास हम सबका ध्यान उस पर केन्द्रित हुआ। विषय था- कैराना (मु०नगर) से एक वर्ग विशेष के अपराधी तत्त्वों की गुण्डागर्दी के भय से एक वर्ग विशेष का उक्त शहर से पलायन करना। जैसा कि इस देश की राजनीति और राजनीतिज्ञों का स्वभाव है, उसके अनुसार उस विषय के कारण पर गम्भीरता से विचार करके उसके समाधान का प्रयास करने की अपेक्षा उस पर सभी राजनैतिक दलों द्वारा जमकर राजनैतिक पैतरेबाजी का खेल चलता रहा। एक दूसरे पर आरोप- प्रत्यारोप का दौर चलता रहा। अपने आपको एक दूसरे की अपेक्षा अधिक धर्मनिरपेक्ष सिद्ध करने की होड़ लगती रही। अपनी अपेक्षा दूसरे को अधिक कट्टरवादी मानसिकता का सिद्ध करने की कोशिश होती रही। इस प्रकार की राजनैतिक बहसबाजी में कैराना का असली मुद्दा कहीं गायब हो गया। हमारे कुछ राजनैतिक दलों के लिए धर्मनिरपेक्षता एक नकाब की तरह है, जिसे वे अपने क्षुद्र राजनैतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए ओढ़ लेते हैं। धर्मनिरपेक्षता हमारी सांस्कृतिक आध्यात्मिक और सामाजिक जीवन में ऐसा घुन है, जो इन्हें खोखला करने में लगा हुआ है। यह धर्मनिरपेक्षता शब्द उन राजनैतिक दलों के लिए राजनैतिक स्वार्थों की पूर्ति का साधन है और एक वर्ग विशेष के वोट हासिल करने का माध्यम है। जिस राजनीति की बुनियाद तथाकथित धर्मनिरपेक्षता पर टिकी हो, वहाँ समानता की, न्याय की, सद्भाव की, सामञ्जस्य की, सहिष्णुता की आशा करना व्यर्थ है। मुझे एक बात समझ में नहीं आती कि उपरोक्त शब्द (धर्मनिरपेक्ष) एक वर्ग विशेष के लिए तो मजबूत ढ़ाल बन जाता है, जबकि दूसरों के लिए यही अभिशाप बन जाता है, आखिर ऐसा क्यों? यह धर्मनिरपेक्षता शब्द हमारी सांस्कृतिक व सामाजिक परम्पराओं पर एक कलंक है, जिसे धोना अति आवश्यक है। पाकिस्तान में हिन्दू जिस प्रकार अपमानित जीवन जी रहे हैं, उससे लगता है, वहाँ मुस्लिमों को छोड़ कर अन्य किसी को सम्मान व स्वाभिमान की जिन्दगी जीने का अधिकार नहीं है। बांग्लादेश में कोई दिन ऐसा नहीं जाता, जिसमें गैर मुस्लिमों का निर्ममता से संहार न होता हो। यहाँ तो ऐसा लगता है, मानो उपरोक्त देशों में धर्मनिरपेक्ष जैसे शब्दों का न तो कोई महत्त्व है और न ही उनका कोई वजूद है। भारत में धर्मनिरपेक्ष शब्द हिन्दुओं को मिटाने का एक षड़यन्त्र है। क्योंकि दादरी के घटनाक्रम में तो धर्मनिरपेक्षता का नकाब ओढ़कर राजनीतिज्ञ बड़ी मजबूती से पैरोकार बनकर आगे आते हैं, परन्तु जब कश्मीरी पण्डितों की बात आती है, तो तथाकथित धर्मनिरपेक्षता का चोला ओढ़ने वाले राजनीतिज्ञों के मुँह पर ताला लग जाता है। कश्मीर, कैराना और काँधला से पलायन करने वाले जो हिन्दू हैं, उनकी कहानी को सुनकर और पढ़कर ये नहीं लगता कि कथित धर्मनिरपेक्षता की नींव पर टिकी राजनीति और राजनेता कश्मीर से खदेड़े गये पण्डितों का, कैराना और कांधला से भगाये गये हिन्दुओं का किसी प्रकार सहयोग करेंगे। उ० प्र० सरकार के एक जिम्मेदार मन्त्री ने जिस प्रकार इस प्रकरण पर बयान दिया, उससे उपरोक्त प्रसंग में सरकार कितनी गम्भीर व सतर्क है; सिद्ध हो जाता है। उ०प्र० सरकार के कैबिनेट स्तर के मन्त्री आजम खान ने बयान दिया - ''कैराना से किसी के पलायन करने की हमारे पास कोई अधिकृत जानकारी नहीं है। कैराना से कोई पलायन नहीं कर रहा है। यदि कोई कैराना से बाहर जा रहा है, तो वो अपनी तरक्की के लिए बाहर जा रहा है। जिस कैराना

में महिलाओं की अस्मिता पर खतरा हो, जिस कैराना में व्यापारियों की सरेआम गोली मारकर हत्या कर दी जाती हो, जिस कैराना में फिरौती न मिलने पर एक वर्ग विशेष के अपराधियों द्वारा हिन्दू व्यापारियों की हत्या कर दी जाती हो, जिस कैराना में हत्यारों और अपहरणकर्त्ताओं को राजनीतिक संरक्षण प्राप्त होता हो, जिस कैराना में न्यायव्यवस्था का दिवालिया निकल रहा हो और जिस कैराना में मिनी पाकिस्तान के सपने पलते हों, उस कैराना के खतरनाक हालातों का अन्दाजा सहज ही लगाया जा सकता है। इस धर्मनिरपेक्ष शब्द पर मेरे मित्र कई बार प्रश्न करते हुए पूछते हैं कि यह धर्मनिरपेक्षता हमारे देश की आवश्यकता है अथवा मजबूरी? उपरोक्त प्रश्न का मेरा एक ही उत्तर था कि यह धर्मनिरपेक्षता हमारे देश की न तो मजबूरी है और न ही देश की आवश्यकता। यह धर्मनिरपेक्षता कुछ राजनीतिक दलों तथा कुछ राजनीतिज्ञों की मजबूरी है और आवश्यकता भी है। कश्मीर, कैराना और काँधला के मुद्दे पर तथाकथित धर्मनिरपेक्ष राजनीतिक दल, तथाकथित धर्मनिरपेक्षता का नकाब पहने तथाकथित राजनीतिज्ञ और उनकी तथाकथित धर्मनिरपेक्षता के हिमायती पूरी तरह से बेनकाब हुए हैं। धर्मनिरपेक्षता हमारे देश के सामाजिक जीवन के लिए एक बोझ है, तो इस देश की राजनीति के लिए एक विडम्बना है। पाठकगण सोचते होंगे कि धर्मनिरपेक्षता के प्रति मेरा इतना अधिक विरोधी दृष्टिकोण क्यों है? मैं अपने पाठकों को बडी विनम्रता से कहना चाहता हूँ कि उपरोक्त (धर्मनिरपेक्षता) शब्द के कारण देश व समाज को तोड़ने वाली, धर्म के विषय में भ्रम-जाल फैलाने वाली गतिविधियों को प्रोत्साहन मिला है/मिलता है। इस देश की और इस देश की राजनीति का यह दुर्भाग्य है कि धर्मनिरपेक्षता की दलदल से बाहर नहीं निकल पाये। वेद का आदेश है - '' **मा वः स्तेन ईशत माघशंसो''** अर्थात्- हे मनुष्यो! आप पर छलियों-कपटियों (चोरों) का तथा पाप का/ प्रपञ्च का सहारा लेने वालों का शासन न हो।'' तुलसीदास भी लिखते हैं

'' शोचिअ नृपति जो नीति न जाना,
जेहि न प्रजा प्रिय प्राण समाना।''

अर्थात् उस राजा का शोक करना चाहिए, जिसे सत्याधारित, न्यायाधारित और निष्पक्ष राजनीति का ज्ञान नहीं तथा जिसे अपनी प्रजा प्राणों के समान प्रिय नहीं है। धर्मनिरपेक्षता हमारी राजनीति और राजनेताओं का एक ऐसा ओछा हथकण्डा है, जिसमें निष्पक्षता, न्याय, समानता आदि सब खत्म हो जाते हैं। यजुर्वेद में परमात्मा से प्रार्थना की गयी है -

''मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्,
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे,
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।''

अर्थात्- हे भगवान्! मैं समस्त प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखूँ, सभी प्राणी मुझे मित्र की दृष्टि से देखें तथा हम सब एक दूसरे को परस्पर मित्रता की दृष्टि से देखें। यदि धर्मनिरपेक्षता की तसवीर उपरोक्त वेदमन्त्र के अनुरूप होती, तो इस की प्रासङ्गिकता को समझा जा सकता था किन्तु धर्मनिरपेक्षता के ठेकेदार वेदों के ज्ञान को भी साम्प्रदायिक नजरिये से देखते रहे। यदि कश्मीर, कैराना और काँधला की समस्याओं पर नेताओं द्वारा अपनायी गयी धर्मनिरपेक्षता के द्वारा विचार किया जायेगा, तो समस्या घटने की अपेक्षा बढ़ेगी और यदि क्षुद्र राजनीतिक स्वार्थों से ऊपर उठकर निष्पक्षता से न्यायपूर्वक हल खोजने का प्रयास किया जायेगा,तो फिर समस्या को सुलझाने में और उसे समझने में सफलता मिलेगी। कैराना, काँधला का प्रकरण ऐसा है, जिस पर यदि प्रभावी ढंग से नियन्त्रण नहीं किया गया तथा जिम्मेदार तत्त्वों पर प्रभावी कार्यवाही नहीं की गयी, तो भविष्य में देश की एकता, अखण्डता व अस्मिता के लिए चुनौती खड़ी हो जाएगी। महर्षि दयानन्द सत्यार्थ- प्रकाश के छठे समुल्लास (राजधर्म) में लिखते हैं -''जिस सभा में निन्दा के योग्य की निन्दा, स्तुति के योग्य की स्तुति, दण्ड के योग्य को दण्ड और मान्य के योग्य का मान्य होता है, वहाँ राजा और सभासद पाप से रहित और पवित्र हो जाते

हैं। पाप के कर्त्ता को ही पाप प्राप्त होता है।'' क्या धर्मनिरपेक्षता का ढ़िंढ़ोरा पीटने वाले राजनीतिक दल महर्षि के उपरोक्त कथन पर गम्भीरता से विचार कर कोई प्रेरणा लेने का नैतिक साहस दिखाएंगे। हिन्दू, मुस्लिम, सिख , ईसाई आदि में से किसी का प्रयोग केवल वोटबैंक के लिए न किया जाये। इस देश की विडम्बना तो देखिए- हिन्दुओं का पलायन, हिन्दुओं का प्रताडन, हिन्दुओं की हत्या, हिन्दुओं का अपहरण,हिन्दुओं का अपमान, हिन्दुओं से फिरौती, हिन्दुओं को ही धमकी, हिन्दुओं की ही बहिन-बेटियों की अस्मिता पर खतरा और फिर हिन्दुओं को ही साम्प्रदायिक सद्भाव के पाठ का उपदेश; यदि यही धर्मनिरपेक्षता है, तो पाठक स्वयं अनुमान लगा सकते हैं कि यह धर्मनिरपेक्षता का कितना घिनौना और डरावना चेहरा है। हमारे देश की समरसता, हमारे देश की निष्पक्षता, हमारे देश की न्यायव्यवस्था, हमारे देश की मानवता, हमारे देश की सामाजिकता हमारे देश की सामञ्जस्यता और हमारे देश की उदारता सारे संसार के लिए प्रेरणस्रोत रही है। छद्म धर्मनिरपेक्षता से सम्भव है कि राजनीति की नदियाँ पार कर ली जाएँ लेकिन इससे राजनीति का राष्ट्रनिर्माण का पवित्र उद्देश्य कदापि प्राप्त नहीं हो सकता। इससे पहले कि कश्मीर, कैराना और काँधला जैसी पटकथा देश के अन्य भागों में भी लिखी जाए, देश/ प्रदेश की सरकारें ऐसे राष्ट्रविरोधी तत्त्वों पर अविलम्ब आवश्यक कार्यवाही को अमल में लाएं। परमात्मा हमारे राजनेताओं को और समस्त देशवासियों को इतनी शक्ति और सामर्थ्य प्रदान करे कि हम अपनी अस्मिता और गरिमा को बचाकर रख सकें।

❑❑

(पृष्ठ २ का शेष)

बहाने वाला। औरतों को निर्वस्त्र कर बाजार में बेचने वाला, मतलब मैं मरने वाला मुसलमान बनूँगा या मारने वाला? दूसरी शंका ने मानो उन विद्वान् पर हजारों मन बोझ डाल दिया हो। दबी सी आवाज में उसने कहा कि बाकी बची आधी शंका भी बोलो? आर्य सज्जन ने मंद सी मुस्कान के साथ कहा कि वो आधी शंका मेरी धर्मपत्नी जी की है। इनकी शंका आधी इसलिए है कि इस्लाम नारी समाज को पूर्ण दर्जा नहीं देता। हमेशा उसे पुरुष की तुलना में आधी ही समझता है, तो इसकी शंका भी आधी है। मुस्लिम विद्वान् ने कुछ लज्जित से स्वर में कहा कि जी मोहतरमा फरमाइए!!

सज्जन की धर्मपत्नी जी ने बडे सहज भाव से कहा कि यदि ये इस्लाम कबूल कर लें, तो मुझे इससे कोई आपत्ति नहीं, किन्तु मेरी इनके साथ शादी हुए करीब ३५ वर्ष हो गये। अब यदि कल कसी बात पर इन्हें गुस्सा आ गया और मुझे तलाक, तलाक, तलाक, कह दिया, तो बताइए मैं इस अवस्था में कहाँ जाउंगी? यदि तलाक भी ना दिया और कल इन्हें कोई अन्य महिला पसंद आ गयी और ये उससे निकाह करके घर ले आये तो बताइए उस सूरत में मेरे बच्चों का/ मेरे ग्रहस्थ जीवन का क्या होगा? तो ये मेरी आधी शंका है। इस प्रश्न के वार ने मुस्लिम विद्वान् को निरुत्तर कर दिया उसने इन जवाबों से बचने के लिए कहा कि आप अपना परिचय दे सकते हैं। सज्जन ने कहा मेरी शंका ही मेरा परिचय है। यदि आपके पास इन प्रश्नों का उत्तर होगा हमारी ढाई शंका ही मेरा परिचय है। यदि आपके पास इन प्रश्नों का उत्तर होगा/ हमारी ढाई शंका का निवारण होगा, तो आप मुझे बताना। वे सज्जन तो वहाँ से चले गये,पर मौलाना साहब सर पकड़कर बैठे रहे। पर इस सारे वाकये से मेरे मन में जरूर एक शंका खडी हो गयी कि आखिर ये सज्जन कौन हैं। बाद में मुझे पता चला कि ये सज्जन आर्य समाज से जुड़े एक प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं। यह सब जानकर मेरे मुँह से अनायस ही एक स्वर फूट पड़ा आर्य समाज अमर रहे......।

❑❑

परमात्मा को मल-मूत्र की दुर्गन्ध क्यों नहीं आती है?

(भावेश मेरजा मो० ९८७९५२८२४७)

सर्वव्यापक परमात्मा को मल-मूत्र की दुर्गन्ध क्यों नहीं आती है? इस प्रश्न का उत्तर प्रायः यह दिया जाता है कि - सारा ब्रह्माण्ड परमात्मा के गर्भ में है। जैसे हमारे उदर में मल-मूत्र होने पर भी हमको दुर्गन्ध नहीं आती है, वैसे समस्त संसार परमात्मा के गर्भ में होने के कारण परमात्मा को मल-मूत्र की दुर्गन्ध नहीं आती।

उपर्युक्त उत्तर पर मैंने यथामति विचार किया। परमात्मा को मल-मूत्र की दुर्गन्ध नहीं आती है - इसके लिए जो यह हेतु प्रायः पढ़ने-सुनने में आता है, वह मुझे सन्तोष जनक नहीं लगा।

मैं समझता हूँ कि जब हम कहते हैं कि यह सारा ब्रह्माण्ड परमात्मा के गर्भ में है, तब हमें यह विचार करना होगा कि इसका तात्पर्य केवल यही होता है कि सारा ब्रह्माण्ड परमात्मा की अनन्त व्यापक सत्ता में ही स्थित - विद्यमान है, उसके बाहर नहीं है। सीमित ब्रह्माण्ड अनन्त आकाश (अवकाश - खाली स्थान - empty space) में जहां-जहां स्थित है, वहां-वहां अनन्त व्यापक परमात्मा प्रथम से - अनादि काल से विद्यमान है। जहां-जहां यह सीमित - सान्त ब्रह्माण्ड नहीं है, वहां पर भी अनन्त परमात्मा की सत्ता है। इस दृष्टि से कहा जाता है कि यह ब्रह्माण्ड परमात्मा के भीतर है - उसके गर्भ में है, उसकी अनन्त सत्ता के अन्तर्गत ही है। (द्रष्टव्यः यजुर्वेद २५.१० का ऋषि दयानन्द कृत भाष्य) इसी प्रकार यजुर्वेद ३२.३ के भाष्य में ऋषि दयानन्द ने मन्त्रगत **'गर्भः'** को 'अधिकरणः' अर्थ में अर्थात् सूर्य, बिजली आदि पदार्थों का 'आधार' इस रूप में ग्रहण किया है। यही 'गर्भ' का वास्तविक तात्पर्य है। ईश्वर का सभी के भीतर और बाहर अन्तर्यामी रूप से सर्वत्र व्याप्त होना और सर्वाधार होना ही उसका 'गर्भ' है। इससे पृथक् उसका कोई भौतिक 'गर्भ' नहीं है।

यह सत्य है कि हम मनुष्यादि को शरीरस्थ मल-मूत्र की दुर्गन्ध नहीं आती है। दुर्गन्ध नहीं आने का कारण परम दयालु, सर्वज्ञ ईश्वर द्वारा की गई हमारे शरीर की वैज्ञानिक संरचना है। हमारी घ्राणेन्द्रिय हमारे शरीर के बाह्य आवरण पर लगे और उसके बाहर के गन्धयुक्त पदार्थों की ही गन्ध को ग्रहण कर सकती है, शरीर के भीतर के गन्ध युक्त पदार्थो की गन्ध को ग्रहण नहीं कर सकती है। ऐसी उत्तम व्यवस्था हमारे शरीर में परमात्मा ने हमारे कल्याण के लिए की है।

शरीरस्थ गन्ध युक्त पदार्थों का हमारी घ्राणेन्द्रिय से सन्निकर्ष न हो पाने से उन पदार्थों की गन्ध को हम प्रत्यक्ष - अनुभव नहीं कर पाते हैं। यह सन्निकर्ष न हो पाने का कारण उन दोनों के बीच के आवरण - व्यवधान हैं, जिनकी रचना परमात्मा ने सप्रयोजन की है।

अब हम परमात्मा का विचार करते हैं। परमात्मा शरीर-रहित है, घ्राणेन्द्रिय-रहित है। अतः जैसे हम शरीरधारी जीव गन्ध का अनुभव - प्रत्यक्ष करते हैं, वैसे - उस प्रक्रिया से - इन्द्रियों के माध्यम से - परमात्मा गन्ध का अनुभव या 'प्रत्यक्ष' नहीं करता है।

हम शरीरधारी होने से कुछ गन्ध हमको 'सुगन्ध' प्रतीत होती हैं, और कुछ 'दुर्गन्ध'। जबकि 'अकायम्' ईश्वर को अपने लिए न कुछ 'सुगन्ध' है, और न ही 'दुर्गन्ध'। वह जगत् का अभोक्ता है - साक्षी मात्र - केवल द्रष्टा - **'अनश्नन् = न भोक्ता हुआ'** (ऋग्वेद : १.१६४.२०)। वह न सुगन्ध का भोग, अनुभव या अनुभूति करता है, न ही दुर्गन्ध का। ये सुगन्ध-दुर्गन्ध ता हम जीवों के भोग के लिए हैं।

वैसे तो जगत् के समस्त गन्ध युक्त पदार्थ और परमात्मा के बीच कोई भी भौतिक आवरण - व्यवधान

नहीं है, व्यापक-व्याप्य भाव से 'अव्यवहित' अर्थात् आवरणरहित सम्बन्ध है, उसको सब कुछ प्रत्यक्ष है - सर्वव्यापक होने से; फिर भी अपने स्वरूप से 'अभोक्ता' होने से ईश्वर न सुगन्ध ग्रहण करता है और न ही दुर्गन्ध।

अतः यह तर्क या हेतु विचारणीय है कि - समस्त संसार परमात्मा के गर्भ में होने के कारण परमात्मा को मल-मूत्र की दुर्गन्ध नहीं आती।

मुझे लगता है कि 'अभोक्ता ' होने से ईश्वर जगत् के गन्ध युक्त पदार्थों की गन्ध का भोग - अनुभव नहीं करता है - यह उचित तर्क लगता है।

यह जानना रसप्रद होगा कि हम अपने हवन कुण्ड में जिन सुगन्ध युक्त द्रव्यों की आहुति श्रद्धापूर्वक प्रदान करते हैं, उन पदार्थों की सुगन्ध को भी ईश्वर अपने भोग के लिए बिल्कुल ही ग्रहण नहीं करता है। यह सुगन्ध तो वास्तव में हमारे अपने और अन्य जीवधारियों के कल्याण या उत्कर्ष के लिए है, ईश्वर के भोग के लिए नहीं है। '**इदमग्नये - इदन्न मम**' का वास्तविक प्रयोजन यही प्रतीत होता है कि हम यह यज्ञ रूप सत्कार्य ईश्वर के लिए अर्थात् ईश्वरप्राप्ति के लिए - ईश्वरीय आज्ञा के पालनार्थ - परोपकार के लिए कर रहे हैं; केवल अपने स्वयं के किसी क्षुद्र लौकिक स्वार्थ के लिए नहीं।

भले ही ईश्वर किसी भी प्राकृतिक सुगन्ध-दुर्गन्ध का भोग - अनुभव नहीं करता है, परन्तु उसे इस बात का पूरा ज्ञान है कि विभिन्न योनियों के जीवों को कैसी गन्ध 'सुगन्ध' और कैसी गन्ध 'दुर्गन्ध' प्रतीत होती है। उसे गन्ध विषयक ज्ञान ता है ही, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं लेना चाहिए कि वह गन्ध का 'भोग' करता है। सत्यार्थ प्रकाश के अष्टम समुल्लास में ऋषि दयानन्द ने लिखा है- ''**मिष्ट, क्षार, कटुक, कषाय, तिक्त, अम्लादि विविध रस; सुगन्धादियुक्त पत्र, पुष्प, फल, कन्द, मूलादि रचन... परमेश्वर के बिना कोई भी नहीं कर सकता।''** इससे भी यही सिद्ध होता है कि जगत्कर्ता ईश्वर को हम जीवों को भोग के लिए किन-किन प्रकार के विभिन्न रसों, गन्धों इत्यादि की आवश्यकता पड़ती है, उसका परिज्ञान उसे अनादि काल से है। उसे इस बात का अनादि काल से नित्य ज्ञान है कि मनुष्यादि जीव किसे मिष्ट, क्षार, कटुक आदि और किसे सुगन्ध-दुर्गन्ध आदि के रूप में ग्रहण करते हैं।

गन्ध एक प्राकृतिक गुण है, जगत् के उपादान कारण 'मूल प्रकृति' में गन्ध गुण होता है। 'कारण' के गुण 'कार्य' में आते हैं - '**कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः।**' (वैशेषिक दर्शन : २.१.२४) सृष्टि निर्माण की प्रक्रिया में आगे चलकर गन्ध को 'पृथिवी' नामक एक द्रव्य का गुण माना गया। परन्तु विचारणीय यह है कि 'पृथिवी' नामक एक द्रव्य का गुण माना गया। परन्तु विचारणीय यह है कि पृथिवी में यह गन्ध गुण आया तो उसके कारण द्रव्य 'मूल प्रकृति' से ही। अभाव से तो भाव की उत्पत्ति सम्भव नहीं है।

ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वव्यापक होने से प्रकृति, पृथिवी एवं इन द्रव्यों के समस्त गुणों को भी यथार्थ रूप में जानता है। अतः ईश्वर को गन्ध गुण का सम्पूर्ण ज्ञान है, परन्तु ज्ञान होते हुए भी वह गन्ध का भोग कदापि नहीं करता है - अभोक्ता होने से।

जिन शास्त्र वचनों में कहा गया है कि ईश्वर निराकार - अशरीरी होते हुए भी देखता है, सुनता है - जैसे कि, '**अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः। स वेत्ति विश्वं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्।।**' (श्वेताश्वतर उपनिषद् : ३.१९), वहाँ भी यही तात्पर्य समझना चाहिए कि हम जीव जिन गन्धादि प्राकृतिक गुणों का ज्ञान अथवा भोग इन्द्रियों के माध्यम से करते हैं, उन सभी गुणों का ज्ञान ईश्वर विना किसी इन्द्रिय कर लेता है। परन्तु केवल ज्ञान, भोग नहीं - सर्वज्ञ और अभोक्ता होने से।

इस विषय को यहाँ पूरी सावधानी पूर्वक प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। फिर भी चाहता हूँ कि सुविज्ञ पाठक इस विवेचना की परीक्षा कर इसमें रह गई अपूर्णता और दोषों का निर्देश कर मार्गदर्शन करने की कृपा अवश्य करें।

❑❑

हाय! दिनकर जी लिख गऐ!

(राजेशार्य,आड्डा,मो0ः-0९९९१२९१३१८)

प्रिय पाठकवृन्द! नेहरु जी की पुस्तक 'संस्कृति के चार अध्याय' की प्रस्तावना में लिखा है - ''भारतीय जनता की संस्कृति का रूप सामासिक है और उसका विकास धीरे-धीरे हुआ है। एक ओर तो इस संस्कृति का मूल आर्यों से पूर्व, मोहनजोदड़ो आदि की सभ्यता तथा द्रविड़ों की महान् सभ्यता तक पहुँचता है। दूसरी ओर, इस संस्कृति पर आर्यों की बहुत ही गहरी छाप है, जो भारत में मध्य एशिया से आये थे।''

यह मिश्रित संस्कृति का नाटक, जिसे दिनकर जी ने भी सामासिक संस्कृति कहा है, नेहरु जी द्वारा आयोजित किया गया है, अन्यथा इसका कोई आधार नहीं है। १९४७ में भरतीय संस्कृति से द्वेष रखने वालों ने पाकिस्तान के समर्थन में वोट दी थी। उनमें से बहुत से वहाँ चले गये, बहुतों को रोक लिया गया, कुछ मजबूरी में यहाँ रह गये और कुछ पूर्वजों की भूमि से प्रेम के कारण नहीं गये। इसाई संस्कृति (सभ्यता) वाले बोरी बिस्तरे बाँधे जाने के लिए तैयार बैठे थे, उन्हें नेहरू जी ने यहीं रहने और मजहबी प्रचार करने की स्वतंत्रता दे दी। क्योंकि वे सब संस्कृतियों का प्रतिनिधित्व करना चाहते थे अर्थात् देश जिन साम्प्रदायिक समस्याओं से मुक्त हो सकता था, उसे पहले से भी गहरे दलदल में फेंक दिया। यहाँ उन्होंने आर्यों को तो मध्य एशिया का निवासी माना, पर भारत में उनके आने से पूर्व दो सभ्यताओं का भी अस्तित्व माना है, वे हैं मोहनजोदड़ो वाले (पता नहीं कौन थे) और द्रविड़। भारत और आर्यावर्त्त नाम तो आर्यों की देन हैं। इससे पूर्व इस देश का नाम, इतिहास, साहित्य आदि को कोई नहीं जानता। तथाकथित द्रविड़ों का इतिहास आर्यों के साथ शुरू होता है, जो इनके एक होने और मूलतः भारतीय संस्कृति का होने को सिद्ध करता है। फिर इन्हें आपस में लड़ाने के लिए राजनीति करने वालों के ढोल की पोल तो अपने आप खुल गई।

सिन्धु सभ्यता वालों पर आर्यों के तथाकथित आक्रमण का प्रचार करने वालों को चुनौती देने वाले श्रीधर वाकणकर की मान्यता के अनुसार सिन्धु सभ्यता को सरस्वती सभ्यता नाम दिये जाने की आवाज उठने लगी है, क्योंकि अब तक खोजी गई १४०० बस्तियों में से केवल ८० बस्तियाँ ही सिन्धु और उसकी सहायक नदियों के क्षेत्र में पाई गई हैं। लगभग ८०% (११००) बस्तियाँ सिन्धु और गंगा के बीच के मैदान में स्थित हैं; जहाँ कभी सरस्वती नदी बहती थी। सरस्वती नदी की खोज (खुदाई) होने से इस विचारधारा को बल मिलेगा कि आर्यों के साहित्य में गंगा-यमुना की तरह वर्णित पावन सरस्वती के तट पर आर्यों के ही बस्तियाँ थीं। यदि देश-वासियों का स्वाभिमान जगे, तो झूठा इतिहास बदल सकता है।

दिनकर जी ने स्वयं न तो वेद पढ़े थे और न उपनिषद्। केवल दूसरों के कथन लिखकर ऋषियों को माँसाहारी बता दिया (पृ० ३३)। हम मानते हैं कि अच्छे-बुरे लोग सब काल में सब जगह रहे हैं। उनकी संख्या घटती-बढ़ती रहती है और बहुसंख्यक के आधार पर ही समाज को वैसा माना जाता है। अतः वैदिक ऋषियों के काल में माँसाहारी मनुष्य रहे हों, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है, पर उन्हें ऋषि की पदवी नहीं दी जाती थी। वह कोई पुराणों के काल्पनिक स्वर्ग का राजा देवराज इन्द्र नहीं था, जो असंख्य अप्सराओं से सम्बन्ध रखने के बाद भी देवता बना रहे। हाँ, सम्भवतः दिनकर जी ने अपने ऋषि (स्वामी विवेकानन्द) को माँसाहारी देखकर कल्पना कर ली हो कि वैदिक ऋषि माँसाहारी थे और उनका यज्ञ हिंसायुक्त था। पर

उन्होंने वैदिक ऋषियों की परम्परा के उत्तराधिकारी व वर्तमान के वैदिक ऋषि (स्वामी दयानन्द) को क्यों नहीं देखा? जिसने माँसाहारियों को ऐसी फटकार लगाई कि जब तुम्हें खाने के लिए पशुओं का माँस नहीं मिलेगा, तो मनुष्यों का माँस भी छोड़ोगे या नहीं। बेरहमी से मारे जा रहे गाय आदि पशुओं की पीड़ा से द्रवित होकर जिसने अपने न्यायकारी परमात्मा को भी उलाहना दे दिया था कि इनके लिए तेरी न्याय सभा बन्द क्यों हो गई है।

वेदों में यज्ञ के लिए 'अध्वर' (हिंसा रहित) शब्द है और गो-अश्व आदि पशुओं की रक्षा का बार-बार आदेश दिया गया है। औषधियों के कुछ मिलते-जुलते नामों (शब्दों) को देखकर स्वार्थी लागों ने वेदों में माँसाहार की कल्पना की है। जैसे- वर्तमान समाज में अंग्रेजी सभ्यता के मतवालों द्वारा दो शब्दों 'लेडिज फिंगर' और 'हॉट डॉग' का खूब प्रयोग किया जाता है और ये दोनों खाने के पदार्थ हैं, पर अर्थ के अनुसार (औरत की अंगुली, गर्म कुत्ता) नहीं , अपितु भिण्डी और एक फास्ट फूड पदार्थ हैं। तो क्या भविष्य में ऐसा कहा जाएगा कि पहले लोग औरत की अंगुली और गर्म कुत्ता खाते थे? यही भ्रान्ति स्वार्थी अज्ञानियों को ऋषियों के विषय में हुई है, अन्यथा वाल्मीकि जैसा ऋषि तो तीर से मारे गये पक्षी को और उसके वियोग में क्रन्दन करते साथी पक्षी की पीड़ा को भी सह न सका और तत्काल शिकारी को शाप दे दिया। पतञ्जलि जैसा ऋषि अष्टांग योग में अहिंसा को प्रथम स्थान देता है। योगदर्शन का भाष्य करने वाले महर्षि वेद व्यास ८१ प्रकार की हिंसा बताकर उससे निवृत्त होने को ही पूर्ण अहिंसा मानते हैं। महाभारत में **अहिंसा परमो धर्मः** (वन पर्व २०७-७४) कहा है व आदिपर्व. ११-१३ में भी यही उपदेश है। मनुस्मृति (५-५१) में तो प्राणी को मारने, खाने और परोसने वाले को भी हत्यारा और पापी माना है। वेदों में एक-एक जीव का नाम गिनाकर न मारने की आज्ञा दी है। दिनकर जी उन्हें देख लेते, तो अन्धकार न फैलाते।

ऋाषियों के ग्रन्थों में मांसाहार के समर्थन में जो थोड़ा बहुत मिलता है, वह बाद के स्वार्थी व धूर्त अज्ञानियों की शरारत है। दिनकर जी ने पृ० १६० पर इस सत्य को स्वीकार किया है - ''वामाचारियों का भी विश्वास है कि जो चीज मनुष्य को नीचे गिराती है, वही उसे ऊपर भी ले जाती है। इसी विश्वास के कारण वाममार्ग में मद्य, मांस, मीन, मुद्रा, और मैथुन से युक्त पंच-मकार पूजा का प्रचलन हुआ, जिससे कितनी ही बुराइयाँ उत्पन्न हुईं और शाक्त-धर्म दूषित एवं कलुषित समझा जाने लगा। .... वाममार्गियों के साथ कितनी ही ऐसी बातें देखी गयी हैं, जिनका सभ्य, स्वच्छ एवं शिष्ट जीवन से कोई मेल नहीं है। उदाहरणार्थ, उनके बीच अखाद्य खाने का, अपेय पीने का और अगमनीय के साथ गमन करने का रिवाज रहा है।'' (८वीं शताब्दी तक अधिकतर बौद्ध वाममार्गी हो चुके थे)

ऐसे ही धूर्तों ने अपने विचारों की गन्दगी को तन्त्र- ग्रन्थों, पुराणों व स्मृतियों में तो लिखा ही रामायण, महाभारत व मनुस्मृति आदि में भी घुसेड़ दिया। ऋषि दयानन्द ने ऐसे दुराचारी भक्तों के कुकर्मों का पर्दाफाश किया, तो स्वामी विवेकानन्द ने भी लिखा - ''इन (वाममार्गियों) के ग्रन्थ भयानक कर्मों का विधान करते हैं, ये लोग रात को पैशाचिक कृत्य करते हैं, वामाचार के तंत्रग्रन्थ बीभत्स हैं।'' (पत्रा० भा०२, पृ०१३८)

इन राक्षसों की निर्दयता के कारण ही श्रेष्ठतम कर्म कहे जाने वाले यज्ञ में भी पशुबलि दी जाने लगी। वैदिकयज्ञ तो सात्विक ही था। दिनकर जी ने भी लिखा है- '' किन्तु जब उन (आर्यों) का यज्ञवाद भोगवाद का पर्याय बनने लगा (बुद्ध काल में) और आमिषप्रियता से प्रेरित ब्राह्मण जीवहिंसा को धर्म मानने लगे, इस देश की संस्कृति यज्ञ और जीवघात, दोनों से विद्रोह कर उठी। महावीर और बुद्ध... ।'' (पृ०४१)

जब दिनकर जी स्वयं मानते हैं कि यज्ञ में हिंसा बुद्ध के काल से कुछ समय पूर्व आरम्भ हुई अर्थात्

इससे पूर्व तक यज्ञ सात्विक था, तो फिर वैदिक ऋषियों को मांसाहारी किस आधार पर लिखा? यज्ञ में मांस डालना राक्षसीवृत्ति थी और ऐसे यज्ञ-विध्वंसकों का विनाश करने के लिए ऋषि विश्वामित्र राम-लक्ष्मण को ले जाते हैं। वैदिक ऋषियों को मांसाहारी बताकर दिनकर जी किस संस्कृति का प्रचार करना चाहते थे? बौद्ध काल में मांसाहारी ब्राह्मणों के कारण यज्ञ प्रदूषित हुआ; इसी कारण बुद्ध व महावीर ने यज्ञ का विरोध किया' यह मानकर भी दिनकर जी ने पं० रामगोविन्द त्रिवेदी को प्रमाण मानकर लिख दिया- ''यज्ञ आर्यों का मुख्य धर्म था और यज्ञ में पशु-हिंसा काफी की जाती थी।'' (पृ० ६१)

प्रबुद्ध पाठक! दिनकर जी की आँखें थीं और वे पढे-लिखे भी थे, फिर स्वयं ही कुछ पढ़कर देख लेते। हर बात दूसरों की लिख दी। फिर लेखक किस बात के हुए? क्या ऐसे निराधार लेखों के कारण ही आज के हिन्दू नेता गोहत्याबन्दी का विरोध करने के लिए ऋषियों को मांसाहारी नहीं कह रहे हैं और हिन्दू फिल्म कलाकार व सिरफिरे सेकूलर खुलेआम गोमांस की पार्टी नहीं कर रहे हैं? हाय! जिस देश में 'गाय की चर्बी' के कारण स्वतंत्रता संग्राम का सूत्रपात हुआ था और बहादुरशाह जफर ने दिल्ली की गद्दी पर बैठते ही गोहत्याबन्दी की घोषणा की थी, आज उसी देश की कोई हिन्दू महिला खुलेआम यह चिल्लाती हुई घूम रही है- मैं भी गोमांस खाती हूँ, हिम्मत है तो मुझे मारो।' क्या नेहरू जी और दिनकर जी सामासिक संस्कृति वाला ऐसा ही देश बनाना चाहते थे?

आगे दूसरों की नकल कर दिनकर जी ने लिखा है कि अथर्ववेद में मारण, मोहन, वशीकरण और उच्चाटन आदि विद्याओं का ही वर्णन है। यदि दिनकर जी में सत्य को जानने और प्रचारित करने की लालसा होती, तो वे वेदों के अधिकारी विद्वानों के सम्पर्क में आते; उनके ग्रन्थ पढ़ते; कोई तुलनात्मक अध्ययन करते। वहाँ जाने से दिनकर जी को वैदिक होने का डर लगा होगा। अतः राजशेखर का दीपक लेकर अन्धेरे में डूब गये। पूरे ग्रन्थ में स्वामी दयानन्द को केवल एक स्थान पर प्रमाण रूप में माना है- ''गीता में भगवान कृष्ण ने बड़े ही सन्तोष से कहा है, **'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण-क्रम विभागशः।'** वर्णाश्रम का समर्थन स्वामी दयानन्द और महात्मा गाँधी ने भी किया है।'' (पृ०४७)

गीता चाहे महाभारत युद्ध के समय भगवान् कृष्ण द्वारा बोली गयी हो या बाद में पण्डितों द्वारा उपनिषदों से संग्रह की गयी हो, पर यह सत्य है कि गीता के समय आर्यों में केवल गुण कर्म पर आधरित चार वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) की ही व्यवस्था चलती थी, विभिन्न जन्मना जातियों की नहीं। फिर भी दिनकर जी ने अगले ही (पृ० ४८) पर यह लिख दिया - ''एक अनुमान यह है कि जाति-प्रथा का आश्रय आर्यों ने इसलिए लिया कि जब वे इस देश में आकर बस गये, तब यहाँ अनेक जातियों के लोग बस रहे थे।'' और उससे अगले ही पृ० (४६) पर श्री जयचन्द्र विद्यालंकार का प्रमाण उद्धृत किया है- ''जात-पाँत की ठीक जात-पाँत के रूप में स्थापना १०वीं शताब्दी ई० में आकर हुई है और उसके बाद भी, मिश्रण पूरी तरह बन्द नहीं हो गया। शहाबुद्दीन गोरी के समय तक हम हिन्दू जातों में बाहर के लोगों को सम्मिलित होते देखते हैं।..''

दिनकर जी की वास्तविक मान्यता क्या है, पाठक स्वयं निर्णय कर लें। दूसरी बात, वर्णाश्रम के विषय में दयानन्द और गाँधी इकट्ठे नहीं रखे जा सकते। क्योंकि स्वामी दयानन्द वेद, मनु व गीता की गुणकर्म वाली व्यवस्था के पक्षधर थे और गाँधी जी जन्मना व्यवस्था के। अथर्ववेद के प्रतिपाद्य विषय में भी दिनकर जी स्वामी दयानन्द या उनके विद्वान् शिष्यों से पूछ लेते, तो अच्छा होता। पाठक भ्रमित न हों, अतः वेदों के अधिकारी विद्वान् डॉ० रघुवीर वेदालंकार (दिल्ली) के विचार इस विषय में दिये जा रहे हैं-

आज डाक्टरी परीक्षणों के आधार पर यह भली-भाँति

सिद्ध हो गया है कि अनेक मानसिक तथा शारीरिक रोगों से ग्रस्त रोगियों को ही अज्ञानवश भूत-प्रेतों आदि से ग्रसित समझ लिया जाता है। इसी प्रकार अथर्ववेद में भी इन सब बातों का वर्णन है, कृत्या, अभिचार आदि के नाम हैं, वशीकरण सम्मोहन मणिबन्धन भी हैं। इन सबका आधार कौशिकसूत्र है। कौशिकसूत्र में अथर्ववेद के मन्त्रों का ऐसे अनेक गर्हित एवं कपोल-कल्पित कार्यों के लिए विनियोग किया गया है, जिनकी गन्ध भी अथर्ववेद में नहीं है। जैसे- अथर्ववेद का० ३ सूक्त ३० में **'सहृदयं सामंनस्यमविद्वेषं..'** इत्यादि सात मंत्र हैं, जो परिवार, समाज तथा राष्ट्र में सौमनस्य उत्पन्न करने के लिए प्रसिद्ध हैं, किन्तु कौशिक ने इस सूक्त का विनियोग इस प्रकार किया है- ग्राम के मध्य जलकुम्भ और सुराकुम्भ को घुमायें। त्रिवर्षवत्सिका गौ के माँसखण्डों एवं सम्पातित अन्न एवं सुरा का पान करायें।

इसी प्रकार अथर्ववेद ४/२ में **'य आत्मदा बलदा..'** आदि आठ मन्त्र हैं। यह सूक्त परमात्मा की सर्वशक्तिमत्ता एवं सर्वव्यापकता का प्रतिपादक है, किन्तु कौशिक ने इसका विनियोग किया है कि वन्ध्या गौ का वध करके उसके अंगों से होम करे तथा इस सूक्त का जय करके गाय के लिये शान्त्युदक छोड़े।' इस प्रकार कौशिकसूत्र में अनेकों क्रूर, गर्हित एवं राक्षसीय विनियोग भरे पड़े हैं, जिनका अथर्ववेद के मन्त्रों से दूर का भी सम्बन्ध नहीं है। यह कौशिक वाममार्गी राक्षस था, इसीलिए उसने ऐसे गर्हित कार्यों को वेदों पर थोंप दिया। कौशिक का प्रभाव ही सायणाचार्य आदि भाष्यकारों पर पड़ा। कौशिकसूत्र के आधार पर ही सायण ने अपना भाष्य किया है। अथर्व० काण्ड१ सूक्त ७-८ के सम्बन्ध में सायण लिखते हैं - **''आविष्ट भूतपिशाचाद्युच्चाटनार्थं...होमादीनि...अनेन गणेन कुर्यात्''।** जबकि इन सूक्तों में भूत-पिशाच आदि का कोई उल्लेख नहीं है।

कौशिकसूत्र तथा सायणभाष्य का ही प्रभाव है कि ब्लूमफील्ड, मैक्डानल आदि पाश्चात्य भाष्यकारों तथा उनके अनुयायी भारतीय भाष्यकारों तथा वेदचिन्तकों ने भी अथर्ववेद को जादू-टोनों का वेद समझ लिया। उन्हीं की नकल कर दिनकर जी ने भी लिख दिया कि अथर्ववेद में मारण, मोहन, वशीकरण आदि विद्याओं का ही वर्णन है। क्या ५९८७ मंत्रों में केवल यही है? दिनकर जी अन्धेर फैला गये। डॉ० रघुवीर वेदालंकार जी ने लिखा है कि अथर्ववेद में अनेक विद्याओं का प्रतिपादन है। यथा - ब्रह्मविद्या, चिकित्साशास्त्र, मनोविज्ञान, सुव्यवस्थित राज्य प्रणाली तथा अन्य अनेक लोकोपयोगी विषय ही अथर्ववेद में प्रतिपादित हैं। इन सबमें कहीं पर भी जादू-टोना आदि नहीं हैं।' वेदाचार्य विद्वान् ने अपने विषय को सप्रमाण स्पष्ट करते हुए दिल्ली विश्वविद्यालय में २५ अगस्त १९९२ को विस्तृत निबन्ध प्रस्तुत किया था, जो वेदवाणी ज्येष्ठ सं० २०५० वि० में छपा है।

दिनकर जी ने लिखा है कि उपनिषदों में बहुत सी बातें परस्पर विरोधी हैं (पृ० ९५)। यह लिखकर दिनकर जी ने उपनिषदों का सम्मान बढाया या घटाया? दिनकर जी ने ऋषि दयानन्द की आलोचना इसीलिए की कि उन्होंने उपनिषदों पर वेदों वाली श्रद्धा नहीं दिखायी। यदि दिनकर जी की बात मानी जाए, तो क्या उपनिषद् वेद वाली श्रद्धा के पात्र हैं? यदि उपनिषदों में विरोध है, तो उपनिषदों की सारभूत गीता में भी विरोध (परस्पर) मानना पड़ेगा। फिर दिनकर जी किस मुँह से ऋषि दयानन्द पर यह आरोप लगा रहे हैं कि उन्होंने युग-युग से पूजित गीता को कोई महत्त्व नहीं दिया? उपनिषदों में परस्पर विरोधी बातें हो सकती हैं, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। क्योंकि दिनकर जी ने स्वयं माना है कि उपनिषद् अकबर के काल तक लिखे जाते रहे और मान्यता प्राप्त ग्यारह उपनिषद् भी धूर्तों के षड्यंत्र से नहीं बचे हैं। अब प्रश्न है कि दिनकर जी इन्हें सम्पूर्ण हिन्दुत्व में मानते थे या नहीं और क्या दोनों विचारधाराओं का एक साथ समर्थन व प्रचार

सम्भव है? फिर दिनकर जी महर्षि दयानन्द की स्वविवेक का प्रयोग कर प्रक्षिप्त को छोड़ने वाली नीति से आहत क्यों हुए?

दिनकर जी ने अपने ग्रन्थ में कई बार लिखा है कि आर्य-द्रविड़ का भेद सरासर काल्पनिक है। फिर भी दूसरों की नकल करके न केवल द्रविड़ों को आर्यों से भिन्न माना, अपितु उन्हें भी आर्यों से पूर्व भारत में आने वाले (पता नहीं किस देश से आये) विदेशी लिखा है। मोहनजोदड़ों और हडप्पा को द्रविड़ सभ्यता मानकर उन्होंने कल्पना की कि आर्यों के आगमन से पूर्व इस देश में शिव की और शिवलिंग की पूजा प्रचलित थी (पृ० ५६)। इस प्रकार वे शिव को वैदिक पूर्व का देवता बताते हैं; इन्द्र, अग्नि, विष्णु आदि को वैदिक और राधा को वैदिक से बहुत बाद का देवता बताया है।

यदि शिवलिंग पूजा वेद से पूर्व थी, तो यह कैसे हुआ कि आर्यों ने शिव को तो ग्रहण कर लिया और शिवलिंग पूजा को न केवल छोड़ा, अपितु अपने विस्तृत वैदिक साहित्य में उसके खण्डन-मण्डन में भी कुछ नहीं लिखा? और हडप्पा आदि से प्राप्त मूर्तियों में तथाकथित द्रविड़ देवता शिव का वही रूप मिलता है, जो पुराणों में वर्णित है। दिनकर जी ने माना है कि पुराण गुप्त काल (चौथी शदी ई०) की रचना हैं (पृ० ६३) और दिनकर जी पृ०५६ पर यह भी लिखते हैं कि वेद के रुद्र-शिव प्रकृति के उग्ररूपों (आँधी, तूफान, बाढ़, बिजली, वज्रपात, महामारी, भूकम्प आदि) की कल्पना पर आधारित हैं। किन्तु वे भाँग और धतूरा क्यों खाने लगे, गजाजिन और मुण्डामाल क्यों पहनने लगे, साँपों को शरीर में क्यों लिपटाने लगे और उनके नाम पर लिंग की पूजा क्यों चल पड़ी , इन शंकाओं का समाधान हमें वेदों में नहीं मिलता। ....वेदों के बाद जब पुराणों का जमाना आया, तब पुराणों में अद्भुत कथाओं और कहानियों का अम्बार खड़ा हो गया। ये कथाएँ और कहानियाँ केवल आर्यों के मस्तिष्क की उपज नहीं थी, बल्कि द्राविड़, औष्ट्रिक एवं नीग्रो समाज में तथा बाद को आने वाली मंगोल, यूनानी, शक, आभीर आदि जातियों के यहाँ दन्तकथाओं के रूप में जो कहानियाँ प्रचलित थीं, वे आर्यों के साहित्य में भी घुस पड़ी।''

वेदों में अग्नि, इन्द्र, वायु, विष्णु आदि की तरह रुद्र शिव भी निराकार परमात्मा के लिए प्रयुक्त हुआ है कहीं-कहीं प्राकृतिक शक्ति (पदार्थ) के लिए भी आया है, पर वर्तमान के देवी-देवताओं की तरह उसकी पूजा नहीं होती थी। ब्राह्मणग्रन्थों में कुछ वैदिक आख्यानों की व्याख्या है। पुराणों में उनका मानवीयकरण कर अपनी तरफ से बहुत कुछ कल्पना जोड़ी गई हैं अर्थात् वेदों में जो इन्द्र शब्द सूर्य के लिए था, पुराणों में वह काल्पनिक स्वर्ग का राजा बनकर सुन्दर अप्सराओं से घिरा रहता है और ऋषियों की तपस्या भंग करने के लिए उन अप्सराओं का प्रयोग करता है। विष्णु और शिव का स्वरूप भी पुराणों ने बिगाड़ा है। इस सीधी सी बात को भी दिनकर जी ने जटिल बना लिया, आर्य -द्रविड़ के फेर में पड़कर।

जिस राधा को दिनकर जी तीसरी श्रेणी का देवता मानते हैं, उसकी तो कल्पना ही पुराणकाल में हुई थी। उसमें भी हरिवंश विष्णु और भागवत् पुराण लिखे जाने तक उसका कोई अस्तित्व नहीं था। यह दिनकर जी ने भी माना है और उसकी मूर्ति की पूजा के विषय में पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी का 'मध्यकालीन धर्म साधना' से प्रमाण देकर लिखा है कि प्रेम विलास और भक्ति रत्नाकर के अनुसार नित्यानन्द प्रभु (बंगाल के चैतन्य महाप्रभु के सहकारी) की छोटी पत्नी जाह्नवी देवी जब वृन्दावन गयीं, तो उन्हें यह देखकर बडा दुःख हुआ कि श्रीकृष्ण के साथ राधा नाम की मूर्ति की कहीं पूजा नहीं होती थी। घर लौट कर उन्होंने नयनभास्कर नामक कलाकार से राधा की मूर्तियाँ बनवायीं और उन्हें वृन्दावन भिजवाया। जीव गोस्वामी की आज्ञा से ये मूर्त्तियाँ श्रीकृष्ण के पार्श्व में रखी गयीं और तब से श्रीकृष्ण के साथ राधिका की भी पूजा होने लगी।''

(पृ०६८)

अर्थात् १६वीं शताब्दी के आरम्भ तक कृष्ण-जन्मस्थली के लोग राधा की पूजा नहीं करते थे और इसका आरम्भ भी बंगाल से हुआ। रा०ब० योगेश्चन्द्र राय का अनुमान है कि राधा कृष्ण की काम लीला का वर्णन करने वाला ब्रह्मवैवर्त-पुराण १६ वीं शताब्दी में पश्चिम बंगाल में लिखा गया और उसके लेखक का गीत गोविन्द (जयदेव का) से परिचय था। वैदिक से विकृत होकर हिन्दू बनने तक की यात्रा पर प्रकाश डालते हुए स्वामी डॉ० सत्यप्रकाश सरस्वती ने लिखा है- सिकन्दर के आक्रमण के समय भारतीय लोग यूनानियों के सम्पर्क में आये, जिससे फलित ज्योतिष, शकुन-अपशकुन, मूर्तिपूजा आदि बहुत सी कुरीतियाँ आर्यावर्त्त में प्रचलित हो गईं। बौद्धों की व जैनों की नकल पर मूर्तियाँ, मन्दिर और पुराण बनाये गये। यूनान में मूर्तिकला अद्वितीय थी। वहाँ वैदिक देवताओं- अग्नि, वायु, आदित्य की मूर्तियाँ भी बनती थीं। भारत में भी उन्होंने व उनकी नकल पर भारतीयों ने कामदेव, सरस्वती, यम, सूर्य आदि की मूर्तियाँ बनाईं। मध्यपूर्वीय देशों में से यौन-उपासना भारत में भी आयी, जिसने मन्दिरों में शिवलिंग की स्थापना की और लिंगोपासना की पौराणिक कथा को जन्म दिया। मूर्ख जनता धीरे-धीरे मूर्तिपूजक हो गई। रामायण, महाभारत में भी ये विचार घुसेड़ दिये गये।

सिकन्दर के साथ आये यूनानी विद्वान् यहीं बस गये। उन्होंने संस्कृत में अनेक ग्रन्थ लिखे, जिन्हें हम भूल से भारतीय आर्यों की रचना मानते हैं। ब्रह्मगुप्त ने अपने प्रसिद्ध ज्योतिष ग्रन्थ ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में इन विदेशी विद्वानों की कटु आलोचना की। वैदिक ऋषि न वरदान देते थे, न अभिशाप। पौराणिक ऋषि में अभिशाप और वरदान की क्षमता आयोजित की गई। महाभारत का ऐतिहासिक कृष्ण बाद को प्रक्षिप्त संस्करणों में गीता का कृष्ण बना, उसके मुख से **'यदा-यदा हि धर्मस्य..'** कहलवाया गया। आगे चलकर पौराणिक युग में गीता के कृष्ण से भी काम न चला, तो उसके व्यक्तित्व के साहचर्य में राधा के व्यक्तित्व की कल्पना की गई- गोपियों के साथ नाचने और वंशी बजाने वाला कृष्ण हो गया। श्रृंगार रस के साहित्य ने काव्य की दिशा को नया मोड़ दिया। देवालय भोगालय बन गये।''

जब सब कुछ स्पष्ट है, फिर भी दिनकर जी शैव-मत, शिव व लिंगपूजा को वेद से पूर्व का द्रविड़ मत मानने की हठ कर रहे हैं, पर वे नहीं बता सके कि पुराणों के अतिरिक्त व वेदकाल से पूर्व के किस द्रविड़-ग्रन्थ से यह सिद्ध होता है और उस शिव का स्वरूप क्या था? क्योंकि वैदिक शिव और उसके आधार पर नाम रखे किसी ऐतिहासिक व्यक्ति का विकृत व अधिकांश काल्पनिक स्वरूप (पौराणिक) तो हमारे सामने हैं (रामायण के ऐतिहासिक महावीर हनुमान का स्वरूप भी बिगाड़ा गया है- पहले तो उसे पूंछ वाला बन्दर बनाया और अब पंचमुखी हनुमान की पूजा शुरू हो गई। यह ऐतिहासिक अस्तित्व को समाप्त करने का षड़यंत्र छद्म (छली) भक्तों द्वारा किया गया है), पर तथाकथित द्रविड़ शिव कैसा था, यह दिनकर जी ने स्पष्ट नहीं किया। सिन्धु सभ्यता का द्रविड़ शिव वास्तव में पौराणिक ही था। इस परिवर्तन का कारण वैदिक सिद्धान्त से परे हटना था। जैसे- सुधारक व अहिंसा के प्रचारक बुद्ध की भगवान की जगह पूजा करने वाले उनके शिष्य आज मांसाहार में आकण्ठ डूबे हुए हैं।

यदि हिन्दू समाज में अपने आदरणीय पूर्वजों (देवी, देवताओं, ऋषियों, राजा, महाराजाओं) के इतिहास के प्रति सच्ची श्रद्धा व स्वाभिमान पैदा हो जाए, तो महर्षि वेदव्यास आदि के नाम से पुराणों की ऐतिहासिक सामग्री को दूषित व भ्रष्ट करने वाले बोपदेव जैसे धूर्तों की पापलीला का अन्धानुकरण त्याग कर सारे संसार में पुनः आर्यों की प्राचीन वैदिक संस्कृति का डंका बजाया जा सकता है। जब राम-कृष्ण आदि आर्य थे, तो उनके भक्त या वशंज आर्य क्यों नहीं? (क्रमशः)

❑❑

'शिकागो अमेरिका के विश्व धर्म सम्मेलन में वैदिक धर्म का डंका बजाने वाले आर्य विद्वान् पण्डित अयोध्या प्रसाद'

(मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।)

वैदिक साधन आश्रम तपोवन, देहरादून के ग्रीष्मोत्सव में यमुनानगर निवासी प्रसिद्ध आर्य विद्वान् श्री इन्द्रजित देव पधारे हुए थे। हमारी उनसे कुछ विषयों पर चर्चा हुई। स्वामी विवेकानन्द का विषय उपस्थित होने पर उन्होंने हमें पण्डित अयोध्या प्रसाद वैदिक मिशनरी पर एक लेख लिखने की प्रेरणा की। उसी का परिणाम यह लेख है। हमारी चर्चा के मध्य सामने आया कि स्वामी विवेकानन्द जी का शिकागो पहुँचने, वहाँ विश्वधर्म संसद में व्याख्यान देने और उनके अनुयायिओं द्वारा उनका व्यापक प्रचार करने का ही परिणाम है कि वह आज देश- विदेश में लोकप्रिय हैं। आजकल प्रचार का युग है। जिसका प्रचार होगा, उसी को लोग जानते हैं और जिसका प्रचार नहीं होगा, वह महत्त्वपूर्ण होकर भी अस्तित्वहीन बन जाता है। स्वामी विवेकानन्द जी को अत्यधिक प्रचार मिलने के कारण वह प्रसिद्ध हुए और ऋषि दयानन्द के भक्त पण्डित अयोध्या प्रसाद जी को विश्वधर्मसभा और अमेरिका में प्रचार करने पर भी उनके अनुयायिओं द्वारा उनके कार्यों के प्रचार की उपेक्षा करने से वह इतिहास के पन्नों से किनारे कर दिए गये। अतः यह लेख पं० अयोध्या प्रसाद, वैदिक मिशनरी को स्मरण करने का हमारा एक लघु प्रयास है।

पण्डित अयोध्या प्रसाद कौन थे और उनके कार्य और व्यक्तित्व कैसा था? इन प्रश्नों का कुछ उत्तर इस लेख के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं। **पंडित अयोध्या प्रसाद एक अद्भुत वाग्मी, दार्शनिक विद्वान्, चिन्तक व मनीषी होने के साथ शिकागो के विश्व-धर्म-सम्मेलन सहित कुछ अन्य देशों में वैदिकधर्म का प्रचार करने वाले प्रमुख आर्य विद्वानों में से एक थे।** आपका जन्म १६ मार्च, सन् १८८८ को बिहार राज्य के गया जिले में नवादा तहसील के एक ग्राम '**अमावा**' में हुआ था। आपके पिता बंशीधर लाल जी तथा माता श्रीमती गणेशकुमारी जी थीं। आपके दो भाई और एक बहिन थी। पिता रांची के डिप्टी कमिश्नर के कार्यालय में एक बैंच टाइपिस्ट थे। आप अंग्रेजी, उर्दू, अरबी व फारसी के अच्छे विद्वान् थे। **कहा जाता है कि बंशीधर लाल जी को अंग्रेजी का वेब्स्टर शब्दकोश पूरा याद था।** बचपन में पं० अयोध्या प्रसाद कुछ तांत्रिकों के सम्पर्क में आये, जिसका परिणाम यह हुआ कि तन्त्र में आपकी रुचि हो गई और यह उन्माद यहाँ तक बढ़ा कि आप श्मशान भूमि में रहकर तन्त्रसाधना करने लगे। आपकी इस रुचि व कार्य से आपके माता-पिता व परिवारजनों को घोर निराशा हुई। उन्होंने इन्हें इस कुमार्ग से हटाने के प्रयास किऐ, जो सफल रहे।

बालक की शिक्षा के लिए पिता ने एक मौलवी को नियुक्त किया, जो अयोध्या प्रसाद जी को उर्दू, अरबी व फारसी का अध्ययन कराते थे। कुशाग्र बुद्धि होने के कारण इन भाषाओं पर आपका अधिकार हो गया और आप इन भाषाओं में बातचीत करने के साथ भाषण भी देने लगे। इन भाषाओं के संस्कार के कारण अयोध्या प्रसाद जी स्वधर्म से कुछ दूर हो गये और इस्लाम मत के नजदीक आ गये। महर्षि दयानन्द ने भी कहा है कि जो मनुष्य जिस भाषा को पढता है, उस पर उसी भाषा का संस्कार होता है। वैदिकधर्म की निकटता संस्कृत व हिन्दी के अध्ययन से ही हो सकती है, अन्यथा यह कठिन कार्य है। आपने उर्दू, फारसी व अरबी आदि भाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर '**गनीमत**'

उपनाम से इन भाषाओं में काव्य रचनायें करने लगे। आपका विवाह प्रचलित प्रथा के अनुसार १६ वर्ष की अल्पायु में समीपवर्ती ग्राम लौहरदग्गा निवासी श्री गिरिवरधारी लाल की पुत्री किशोरी देवी जी के साथ सन् १६०४ में सम्पन्न हुआ था। यह देवी विवाह के समय केवल साढ़े नौ वर्ष की थी।

पण्डित अयोध्या प्रसाद जी ने अपने मित्र पं० रमाकान्त शस्त्री को अपने आर्यसमाजी बनने की कहानी बताते हुए कहा था कि उनका परिवार इस्लाम व ईसाइयत के विचारों से प्रभावित था। इसके परिणाम -स्वरूप मेरे पिता ने मुझे एक आलिम फ़ाजिल मौलवी के मकतब में उर्दू और फारसी पढ़ने के लिए भर्ती किया था। एक दिन मेरे मामाजी ने कहा कि अयोध्या आजकल तुम क्या पढ़ रहे हो? अयोध्या प्रसाद जी ने मौलवी साहब की बड़ाई करते हुए इस्लाम की खूबियाँ बताईं। इसके साथ ही उन्होंने अपने मामा जी को हिन्दू धर्म की खराबियाँ भी बताईं, जो शायद उन्हें मौलवी साहब ने बताई होंगी या फिर उन्होंने स्वयं अनुभव की होंगी। पंडित जी के मामाजी कट्टर आर्यसमाजी विचारों को मानने वाले थे। मामाजी ने अयोध्या प्रसाद को महर्षि दयानन्द का लिखा हुआ सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ दिया और कहा कि यदि तुमने इस पुस्तक को पढ़ा होता, तो तुम हिन्दूधर्म में खराबियाँ न देखते और अन्य मतों में अच्छाइयाँ तुम्हें प्रतीत न होतीं। अपने मामाजी की प्रेरणा से अयोध्या प्रसाद जी ने सत्यार्थ प्रकाश पढ़ना आरम्भ कर दिया। पहले उन्होंने चौदहवाँ समुल्लास पढ़ा, जिसमें इस्लाम मत की मान्यताओं पर समीक्षा प्रस्तुत की गई है। उसके बाद तेरहवाँ समुल्लास पढ़कर ईसाई मत का आपको ज्ञान हुआ। आपने अपने अध्यापक मौलबी साहब से इस्लाम मत पर प्रश्न करने आरम्भ कर दिये। पण्डित जी के प्रश्न सुनकर मौलबी साहब चकराये। इस प्रकार पण्डित अयोध्या प्रसाद को आर्यसमाज और इसके प्रवर्तक महर्षि दयानन्द का परिचय मिला और वह आर्यसमाजी बने। महर्षि दयानन्द के भक्त पं० लेखराम की पुस्तक '**हिज्जूतुल इस्लाम**' को पढ़कर आपको कुरान पढ़ने की प्रेरणा मिली और वह विभिन्न मतों के अध्ययन में अग्रसर हुए। पण्डित जी ने सन् १६०८ में प्रवेशिका परीक्षा उत्तीर्ण की। आगे की शिक्षा के लिए आपने हजारीबाग के सेंट कोलम्बस कालेज में प्रवेश लिया। यहाँ आप क्रान्तिकारियों के सम्पर्क में आ गये और देश को आजादी दिलाने की गतिविधियों में सक्रिय हुए। पिताजी ने इन्हें हजारीबाग से हटाकर भागलपुर भेज दिया, जहाँ रहकर आपने इण्टरमीडिएट की परीक्षा सन् १६११ में उत्तीर्ण की। आपकी क्रान्तिकारी गतिविधियों से पिताजी रुष्ट थे। उन्होंने आपको अध्ययन व जीविकार्थ धन देना बन्द कर दिया। ऐसे समय में रांची के प्रसिद्ध आर्यनेता श्री बालकृष्ण सहाय ने पिता व पुत्र के बीच समझौता कराने का प्रयास किया। श्री बालकृष्ण सहाय की प्रेरणा से ही पण्डित अयोध्याप्रसद जी ने पटना के एक धुरन्धर संस्कृत विद्वान् महामहोपाध्याय पण्डित रामावतार शर्मा से संस्कृत भाषा व हिन्दूधर्म के ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया। संस्कृतज्ञान व शास्त्रनैपुण्य के लिए आप अपने विद्यागुरु महामहोपाध्याय जी का कृतज्ञातापूर्वक स्मरण किया करते थे।

पटना से संस्कृत एवं हिन्दूग्रन्थों का अध्ययन कर आप सन् १६११ में कलकत्ता पहुँचे और हिन्दू होस्टल में रहने लगे। यहीं पर पंजाब के प्रसिद्ध नेता डा० गोकुल चन्द नारंग एवं बाबू राजेन्द्र प्रसाद आदि छात्रावस्था में रहते थे। बाद में बाबू राजेन्द्र प्रसाद भरतीय राजनीति के शिखर पद पर पहुँचे। अयोध्याप्रसाद जी ने पहले तो प्रेसीडेन्सी कालेज में प्रवेश लिया और कुछ समय बाद सिटी कालेज में भर्ती हुए। यहाँ रहते हुए आपने इतिहास, दर्शन और धर्मतत्त्व का तुलनात्मक अध्ययन जैसे विषयों का गहन अवगाहन किया। वह अपने अध्ययन की पिपासा को दूर करने के लिए अन्य अनेक मतों के पुस्तकालयों में जाकर उनके साहित्य

का अध्ययन करते थे और अपनी पसन्द का साहित्य भी क्रय करते थे। कलकत्ता में बिहार के छात्रों ने '**बिहार छात्रसंघ**' नामक संस्था का गठन किया, जिसका अध्यक्ष बाबू राजेन्द्र प्रसाद जी को तथा मंत्री अयोध्या प्रसाद जी को बनाया गया। इन्हीं दिनों आप कलकत्ता के आर्यसमाज के निकट सम्पर्क में आये और यहाँ आपके नियमित रूप से व्याख्यान होने लगे। आपने यहाँ आर्यसमाज के पुरोहित एवं उपदेशक का दायित्व भी सँभाल लिया। आपकी वाग्मिता, तार्किकता, आपके स्वाध्याय एवं शास्त्रार्थ-कौशल से यहाँ के सभी आर्यगण प्रभावित होने लगे। स्वाध्याय की रुचि का यह परिणाम हुआ कि आपने बौद्ध, ईसाई और इस्लाम मत का विस्तृत व व्यापक अध्ययन किया। देश को आजादी दिलाने के लिए सन् १९२० में आरम्भ हुए असहयोग आन्दोलन में आपने सक्रिय भाग लिया। इसी साल कालेज स्कवायर में सत्यार्थ प्रकाश के छठे समुल्लास में प्रतिपादित राजधर्म पर भाषण करते हुए आप पुलिस द्वारा पकड़े गये और अदालत ने आपको डेढ़ वर्ष के कारावास का दण्ड सुनाया। आपने यह सजा अलीपुर के केन्द्रीय कारागार में पूरी की । जेल से रिहा होकर आप एक विद्यालय के मुख्याध्यापक बन गये।

पण्डित अयोध्या प्रसाद जी की यह इच्छा थी कि वह विदेशों में वैदिकधर्म का प्रचार करें। इस्लामिक देशों में जाकर वैदिकधर्म का प्रचार करने की भी अपनी तीव्र इच्छा को पूर्ण करने का उन्हें अवसर मिला। आर्यसमाज कलकत्ता और मुम्बई के आर्यों के प्रयासों से पं० अयोध्या प्रसाद जी को शिकागो के अन्तर्राष्ट्रीय धर्मसम्मेलन में वैदिकधर्म के प्रतिनिधि के रूप में भेजा गया। प्रसिद्ध उद्योगपति एवं सेठ युगल किशोर बिडला जी ने पण्डित जी के शिकागो जाने में आर्थिक सहायता प्रदान की। जुलाई, १९३३ में उन्होंने अमेरिका के लिए प्रस्थान किया। विश्व-धर्म-सम्मेलन में उनके व्याख्यान का विषय '**वैदिकधर्म का गौरव एवं विश्व शान्ति**' था। **आपने इस विषय पर विश्व-धर्म-संसद, शिकागो में प्रभावशाली भाषण दिया। वैदिकधर्म संसार का प्राचीनतम एवं ज्ञान-विज्ञान-सम्मत धर्म है व कालावधि की दृष्टि से यह सबसे अधिक समय से चला आ रहा है। वेद की शिक्षायें सार्वजनीन एवं सार्वभौमिक होने से वैदिकधर्म का गौरव सबसे अधिक है। विश्व में शान्ति की स्थापना वैदिक ज्ञान व शिक्षाओं के अनुकरण व अनुसरण से ही हो सकती है। इस विषय का पं० अयोध्या प्रसाद जी ने विश्व-धर्म-सभा में अनेक तर्कों व युक्तियों से प्रतिपादन किया। पण्डित जी का विश्व-धर्म- सभा में यह प्रभाव हुआ कि वहाँ सभा की कार्यवाही का आरम्भ वेदों के प्रार्थनामन्त्रों से होता था और समापन शान्तिपाठ से होता था। यह पण्डित अयोध्या प्रसाद जी की बहुत बड़ी उपलब्धि थी, जिसकी इस कृतघ्न देश और आर्यसमाज में बहुत कम चर्चा हुई।**

इसी विश्व-धर्म-सभा में पण्डित जी ने वैदिक व भारतीय अभिवादन ''**नमस्ते**'' शब्द की बड़ी सुन्दर व प्रभावशाली व्याख्या की। उन्होंने कहा कि भारत के आर्य लोग दोनों हाथ जोड़कर तथा अपने दोनों हाथों को अपने हृदय के निकट लाकर नतमस्तक हो अर्थात् सिर झुकाकर ''**नमस्ते**'' शब्द का उच्चारण करते हैं। इन क्रियाओं का अभिप्राय यह है कि नमस्ते के द्वारा हम अपने हृदय, हाथ तथा मस्तिष्क तीनों की प्रवृत्तियों का संयोजन करते हैं। हृदय आत्मिक शक्ति का प्रतीक है, हाथ शारीरिक बल का द्योतक हैं तथा मस्तिष्क मानसिक व बौद्धिक शक्तियों का स्थान वा केन्द्र है। इस प्रकार नमस्ते के उच्चारण तथा इसके साथ सिर झुका कर व दोनों हाथों को जोड़कर उन्हें हृदय के समीप रखकर हम कहते हैं कि ''...With all the physical force in my arms, with all mental force in my head and with all the love in my heart, I pay respect to the soul with in you.'' नमस्ते की इस व्याख्या का सम्मेलन के पश्चिमी विद्वानों पर

अद्भुत व गहरा प्रभाव पड़ा।

पण्डित जी ने इस यात्रा में उत्तरी व दक्षिणी अमेरिका में वैदिकधर्म का प्रशंसनीय प्रचार किया। यहाँ प्रचार कर पण्डित जी ने गायना और ट्रिनिडाड में जाकर वैदिकधर्म की दुन्दुभि बजाई। ट्रिनिडाड में एक कट्टर सनातनी व पौराणिक व्यक्ति ने पण्डित अयोध्या प्रसाद जी को भोजन पर आमंत्रित किया। यह व्यक्ति अपनी अज्ञानता के कारण पण्डित जी को आर्यसमाज का विद्वान्, प्रखर वाग्मी और उपदेशक होने के कारण उन्हें सनातनधर्म का विरोधी समझ बैठा और उसने पण्डित जी को भोजन में विष दे दिया। यद्यपि पण्डित जी भोजन का पहला ग्रास जिह्वा पर रखकर ही इसमें विषैला पदार्थ होने की सम्भावना को जान गये, उन्होंने शेष भोजन का त्याग भी किया परन्तु इस एक ग्रास ने ही पण्डित जी के स्वास्थ्य व जीवन को बहुत हानि पहुँचाई। वह ट्रिनीडाड से लन्दन आये। विष का प्रभाव उनके शरीर पर था। उन्हें यहाँ अस्पताल में ६ माह तक भर्ती रहकर चिकित्सा करानी पड़ी। उनको दिए गये इस विष का प्रभाव जीवन भर उनके स्वास्थ्य पर रहा।

लन्दन से पण्डित जी भारत आये और कलकत्ता को ही अपनी कर्मभूमि बनाया। आपके जीवन का शेष समय आर्यसमाज के धर्म प्रचार सहित स्वाध्याय, चिन्तन व मनन में व्यतीत हुआ। **पण्डित जी के पास लगभग २५ हजार बहुमूल्य व दुर्लभ ग्रन्थों का संग्रह था। उन्होंने मृत्यु से पूर्व उसे महर्षि दयानन्द स्मृति न्यास टंकारा को भेंट कर दिया।** अनुमान है कि उस समय उनके इन सभी ग्रन्थों का मूल्य दो लाख के लगभग रहा होगा। पण्डित अयोध्या प्रसाद जी के अन्तिम दिन सुखद नहीं रहे। दुर्बल स्वास्थ्य और हृदय रोग से पीडित वह वर्षों तक कलकत्ता के ८५ बहु बाजार स्थित निवास स्थान पर दुःख वा कष्ट भोगते रहे। ११ मार्च, सन् १९६५ को ७७ वर्ष की आयु में वर्षों से शारीरिक दुःख भोगते हुए आपने नाशवान देह का त्याग किया। आपकी पत्नी का देहान्त आपकी मृत्यु से कुछ वर्ष पूर्व ही हो गया था।

पण्डित जी के जीवन का अधिकांश समय स्वाध्याय, उपदेश व प्रवचनों आदि में व्यतीत हुआ। उनका लिखित साहित्य अधिक नहीं है। यदि उन्हें व्याख्यानों आदि से अवकाश दिया जाता, तो वह उत्तम कोटि के बहुमूल्य साहित्य की रचना कर सकते थे। उनके द्वारा रचित साहित्य में - इस्लाम कैसे फैला?, ओम् महात्म्य, भगवान बुद्ध वैदिक सिद्धान्तों के विरोधी नहीं थे, Gems of Vedic Wisdom आदि ग्रन्थ हैं।

हमने इस लेख की सामग्री आर्य विद्वान् डा. भवानीलाल भारतीय जी के लेखों सहित अन्य ग्रन्थों से ली है। उनका हार्दिक आभार एवं धन्यवाद करते हैं। स्वामी दयानन्द ने देश में वेदों व वैदिक-धर्म संस्कृति का प्रचार किया। वह चाहते थे कि भूमण्डल पर वेदों का प्रचार हो। उन्हें विदेशी विद्वान् मैक्समूलर की ओर से इंग्लैंड आकर वेद प्रचार करने का प्रस्ताव भी मिला था। परन्तु देश की दयनीय दशा के कारण वह विदेश न जा सके। यदि वह जाते, तो थोड़े ही समय में अंग्रेजी भाषा सीख कर वहाँ प्रचार कर सकते थे। वहाँ के लोगों की सत्य के ग्रहण की शक्ति भारत के लोगों की तुलना में अच्छी है। आशा है कि वह महर्षि की भावना और वेदों के महत्त्व को उचित सम्मान देते। **आज हमें यह देखकर आश्चर्य होता है कि जितना प्रचार महर्षि दयानन्द सरस्वती अकेले देश में कर गये, उसकी तुलना में आज विश्व में सहस्रों आर्यसमाजें व करोड़ों वेदानुयायिओं के होने पर भी नहीं हो पा रहा है।** यह समय की विडम्बना है या आर्यों का आलस्य/प्रमाद? ईश्वर आर्यों को महर्षि दयानन्द के कार्यों को पूरा करने की प्रेरणा व शक्ति प्रदान करें। इसी के साथ इस लेख को विराम देते हैं।

❑❑

ऋषि दयानन्द के अनन्य भक्त व आर्यों के अनुकरणीय श्रद्धेय लाला दीपचन्द आर्य

'चंचला लक्ष्मी को यशस्विनी रूप देकर वेद प्रचारकों में अमर स्थान बनाया'

--(मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।)

लाला दीपचन्द आर्य, आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द को सर्वात्मना समर्पित वैदिकधर्म के अनुयायी थे। आप केवल वाणी या शब्दों के ही धनी नहीं थे अपितु आपने अपने पुरुषार्थ से अर्जित अपनी पूंजी का बहुत बड़ा भाग ईश्वर की वेदाज्ञा व महर्षि दयानन्द के वेदप्रचार के कार्यों को पूर्ण करने में लगाया था। आज का युग आधुनिक युग कहलाता है। आज यदि हमें किसी से अपनी कोई अच्छी/बुरी बात मनवानी है, तो तर्क व प्रमाणों का सहारा लेना होता है। हमारे तर्क व प्रमाणों को जब दूसरा व्यक्ति स्वीकार कर लेता है, तभी हमारा उद्देश्य पूरा होता है। इसके लिए हम व्याख्यान या उपदेश का सहारा ले सकते हैं। पर उपदेश का प्रभाव स्थाई या दूरगामी नही होता, अपितु सामयिक या अल्पकालिक होता है। यदि हमें प्रचार का स्थाई कार्य करना है, तो फिर हमें अपनी मान्यताओं को सत्य व तर्क की तुला पर तोलकर संक्षेप व सारगर्भित रूप से लेख, पुस्तक, ग्रन्थ, शास्त्र, पत्र, पत्रिका में लिखकर अज्ञानी, अल्पज्ञानी, जिज्ञासु, प्रतिपक्षी, स्वार्थी, विरोधी व कुपथगामियों को बतानी व उनमें प्रचारित करनी होंगी और उन्हें चुनौती देनी होगी कि वह हमारी मान्यताओं का खण्डन करें या स्वीकार करें। महर्षि दयानन्द और उनसे पूर्व व पश्चात के सभी ज्ञानी व विद्वान् यही कार्य कर रहे हैं। कुछ लोग तो अपने अज्ञान व सीमित ज्ञान की पूर्ति के लिए किसी धार्मिक या सामाजिक संस्था का गठन करते हैं परन्तु कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जिनका विलुप्त स्वार्थ होता है और जो भोली-भाली धर्मभीरू व भावुक, अन्धविश्वासी व पाखण्डी जनता को बरगलाते हैं। आजकल समाज में ऐसा ही देखा जा रहा है। बरसात में भूमि पर घास-फूस इसलिए उग जाती है कि उसकी निराई या गुड़ाई करने वाला वहाँ कोई नहीं होता। यही स्थिति हमारे मत-मतान्तरों की सम्प्रति है। यदि वहाँ सत्य-ज्ञानी व विद्या व्यसनी विद्वान् लोग न हों तो अज्ञान, अन्धविश्वास, पाखण्ड, मूर्तिपूजा, फलित ज्योतिष, सामाजिक भेदभाव, स्त्रियों व दुर्बलों के प्रति अत्याचार आदि उत्पन्न व प्रचलित हो जाते हैं। इन्हें दूर करने व रोकने के लिए सत्य का ज्ञान रखने वाले, ईश्वर भक्तों द्वारा वेदों का प्रचार आवश्यक है। **महर्षि दयानन्द सरस्वती व उनके भक्त लाला दीपचन्द आर्य जी ने वेद व सत्य के प्रचार को ही अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य बनाया और देश व विश्व के कल्याण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।**

हम जब वेदप्रचार की बात करते हैं, तो हमें यह ज्ञात होना चाहिए कि वेद क्या है? वेद ईश्वर द्वारा सृष्टि के आरम्भ में अमैथुनी जैविक सृष्टि में उत्पन्न आदि चार ऋषियों अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा को दिया गया मन्त्रों के रूप में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद का शब्द-अर्थ-सम्बन्ध सहित ज्ञान है, जिसमें सब सत्य विद्याएँ एवं आचार-विचार -व्यवहार की सार्वकालिक एवं उपयोगी शिक्षायें हैं। हमें तो ऐसा भी अनुभव होता है कि देवनागरी की वर्णमाला का ज्ञान भी इन आदि व इनके बाद के कुछ व किन्हीं ऋषियों को ईश्वर की प्रेरणा द्वारा ही प्राप्त हुआ था, जब उन्होंने वेदों के संरक्षण का ध्यानावस्थित होकर चिन्तन किया होगा। हमारे इस अनुमान पर वेदों के विद्वान् आर्य जनता का मार्गदर्शन

कर सकते हैं। **वेदों में ईश्वर, जीवात्मा व प्रकृति के सत्यस्वरूप का चित्रण हुआ है जो अन्यत्र विश्व के धार्मिक कहे जाने वाले साहित्य व ग्रन्थों से प्राप्त नहीं होता। इस ईश्वरीय ज्ञान वेद का पालन करना ही मनुष्य जीवन का उद्देश्य है, जिससे मनुष्य जीवन, धर्म अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति करके सफल होता है।** इसे अधिक समझने के लिए महर्षि दयानन्द रचित सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका तथा उनके वेदभाष्य आदि ग्रन्थों का अध्ययन, चिन्तन व मनन आवश्यक है। इसके साथ वैदिक व्याकरण, दर्शन, उपनिषद, मनुस्मृति सहित समस्त वैदिक साहित्य का अध्ययन करने से विशेष लाभ होता है। इनके अध्ययन से सबसे बड़ा लाभ जीवन के सत्य वा यथार्थ उद्देश्य, उसकी प्राप्ति के साधनों एवं साध्य का ज्ञान होकर साध्य की प्राप्ति व सिद्धि होती है। अन्य मत-मतान्तरों में यह कदापि सम्भव नहीं है, ऐसा हमारे अध्ययन से ज्ञान व अनुभव बताता है। महाभारत काल के बाद से हमारे देश व संसार में अज्ञान फैला हुआ है, जिसे वेदों के प्रचार से ही दूर किया जा सकता है। **अपने जीवनकाल में लाला दीपचन्द आर्य आर्यसमाज के सम्पर्क में आये और महर्षि दयानन्द के मानवता के कल्याण के मिशन को समझ कर उससे जुड़ गये। उन्होंने आर्यसमाज और वैदिक धर्म के मर्म को समझा और मानवता का कल्याण करने के लिए स्वयं को समर्पित किया। उन्होंने वेदों के प्रचार-प्रसार के लिए अपनी प्रभूत स्वार्जित पूंजी को समर्पित कर 'आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट' की सन् १९६६ में स्थापना की, जिसने वेदप्रचार के क्षेत्र में उल्लेखनीय ऐतिहासिक महत्त्व का कार्य किया है और उस चंचला लक्ष्मी ने यशस्विनी रूप धारण कर अपने संरक्षक व स्वामी लाला दीपचन्द आर्य को इतिहास में अमर स्थान प्रदान कराया।**

हरयाणा के गुडगाँव जिले के धारूहेड़ा ग्राम में भाद्र कृष्णा २ सन् १९१९ को आपका जन्म एक वैश्य परिवार में हुआ था। दिल्ली में साबुन उद्योग को आपने अपनी व्यावसायिक गतिविधियों का क्षेत्र बनाया और आशातीत सफलता प्राप्त की। दिल्ली में आपने पं० रामचन्द्र देहलवी सहित अनेक विद्वानों के प्रवचन सुन कर आर्यसमाज के साहित्य को पढ़ा और आर्यसमाज नया बांस दिल्ली के सदस्य बन गये। एक बार दिल्ली के खारी बावली क्षेत्र में एक पुस्तकविक्रेता द्वारा सस्ते मूल्य पर ईसाई मत की पुस्तकों को बेचते और बड़ी संख्या में लोगों को उन्हें खरीदते हुए देख कर **आपने यह निष्कर्ष निकाला कि यदि साहित्य सस्ता हो, तो जनता उसे खरीद कर पढ़ती है। आरम्भ में इस घटना से प्रेरित होकर आप अन्य प्रकाशकों से महर्षि दयानन्द के युगान्तकारी ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश की बड़ी संख्या में प्रतियाँ खरीद कर उसे सस्ते मूल्य पर वितरित करने लगे। पर इससे आपकी संतुष्टि नहीं हुई। कुछ ही समय पश्चात आपने अपनी स्वोपार्जित पूंजी से सन् १९६६ में दिल्ली में ''आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट'' की स्थापना की। इस ट्रस्ट का उद्देश्य आर्ष साहित्य का अन्वेषण, उसकी रक्षा, सम्पादन, शुद्ध मुद्रण एवं प्रकाशन तथा लागत से भी कम मूल्य पर इसका पाठकों में वितरण निश्चित किया गया। इस दिशा में ट्रस्ट ने अपूर्व सफलता प्राप्त की और एक नया इतिहास बनाया।**

ट्रस्ट के प्रकाशनों में सत्यार्थ प्रकाश का प्रकाशन मुख्य है। यह प्रकाशन स्वामी दयानन्द के जीवन काल में प्रकाशित सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय संस्करण को प्रामाणिक मानकर किया गया है। यह उल्लेखनीय है कि स्वामी दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा अजमेर द्वारा सत्यार्थ प्रकाश के अब तक ३९ संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें पाठान्तरों की भरमार है। लाला दीपचन्द आर्य ने पहले सत्यार्थ प्रकाश एवं ऋग्वेदादिभाष्य

भूमिका के स्वामी दयानन्द के समय व उनकी मृत्यु के कुछ ही समय पश्चात प्रकाशित संस्करणों की फोटो प्रतियाँ छापीं और उसके पश्चात उनसे मिलान कर आगामी शुद्ध संस्करणों के प्रकाशन की श्रंखला आरम्भ की, जो अद्यावधि जारी है। **आपके इस दूरदर्शिता पूर्ण कार्य से महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों का मूल स्वरूप शुद्ध व अक्षुण्ण बना हुआ है।** इस प्रकार से स्वामी दयानन्द की पुस्तकों के पाठों के संरक्षण का महत्वपूर्ण कार्य ट्रस्ट द्वारा सम्पादित किया गया है, जिसके लिए सारा आर्य जगत व मानव जाति आपकी कृतज्ञ बन गई है। इन दो ग्रन्थों के अतिरिक्त संस्कार विधि, दयानन्द लघुग्रन्थ संग्रह, यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर, ऋग्वेद-भाष्य-भास्कर, के अनेक खण्ड, स्वामी दयानन्द का पं० लेखराम व पं० गोपाल राव हरि लिखित जीवन चरित, विस्तृत मनुस्मृति, विशुद्ध मनुस्मृति एवं वेदार्थ कल्पद्रुम आदि ग्रन्थों का ट्रस्ट द्वारा प्रकाशन कर एक आदर्श प्रस्तुत किया गया। महान ऋषिभक्त लाला दीपचन्द आर्य द्वारा स्थापित आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली ने अक्टूबर, २०१३ तक ही सत्यार्थ प्रकाश के अनेक आकारों में ८० संस्करण प्रकाशित किये हैं। **इनके अन्तर्गत प्रकाशित सत्यार्थ प्रकाश की प्रकाशित प्रतियों की कुल संख्या ११,६३,६५० है। यहाँ यह कहना भी उपयुक्त होगा कि लालाजी ने सत्यार्थ प्रकाश के विभिन्न आकारों में जो सुरूचिपूर्ण, नयनाभिराम, मनमोहक, आकर्षक, प्रभावशाली प्रकाशन किये व अत्यल्प मूल्य पर उनका प्रचार किया, वह आर्यसमाज के इतिहास की एक अन्य प्रमुख व अन्यतम घटना है, जिससे उनका नाम व उनके द्वारा स्थापित ट्रस्ट का नाम आर्यसमाज के इतिहास में गौरव के साथ अंकित हो गया है।** सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय संशोधित संस्करण का ट्रस्ट से इतर अनेक आर्य विभूतियों ने २३ भाषाओं में अनुवाद भी किया है, जिससे देश व विदेश के बड़ी संख्या में लोग लाभान्वित हुए और इससे सर्वत्र हलचल पैदा हुई। इन सब कार्यों से विश्व के साहित्य में सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ ने अपना विशेष स्थान बना लिया। इस ग्रन्थ में सत्य, ज्ञान, युक्ति, तर्क व अनेक प्रमाणों से सिद्ध व निश्चित जो धार्मिक, शैक्षिक, सामाजिक, राजनैतिक मान्यतायें दी गई हैं, उनकी विश्व के साहित्य में उपलब्ध किसी भी धर्म व अन्य ग्रन्थ से कोई तुलना नहीं है अर्थात् **यह ग्रन्थ, कोई माने या न माने, संसार का सर्वोत्तम धर्मग्रन्थ है।**

संस्था की गतिविधियों से जनता को अवगत कराने व वेदप्रचार को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए एक अनुसंधानपूर्ण, सामयिक तथा पाठकपयोगी प्रचारात्मक लेखों का प्रकाशन भी वेदों के प्रचार प्रसार में सहायक है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ट्रस्ट ने सन् १९७२ में **''दयानन्द संदेश''** नाम से एक मासिक पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया, जो अद्यावधि पूर्ण सफलता के साथ जारी है और आज यह आर्यजगत की एक प्रमुख पत्रिका है। **इस पत्रिका को आर्यजगत के प्रसिद्ध वेदों के मर्मज्ञ विद्वान् पं० राजवीर शास्त्री ने सम्पादक के रूप में अपनी अवैतनिक सेवायें देकर ट्रस्ट एवं पत्रिका को गौरवान्वित किया है।** पं०राजवीर शास्त्री की विद्वता, सदाचार, शिष्टाचार, लेखन क्षमता की छाप सारे आर्य- जगत में अंकित है। **वह आर्यजगत के विद्वानों में अजातशत्रु के रूप में सम्मानित हैं।** समय-समय पर पत्रिका वैदिक विषयों पर गवेषणा, अनुसंधान एवं शोध से पूर्ण विशेषांकों का प्रकाशन करती रही है, जिनमें जीवात्म-ज्योति विशेषांक (३ भागों में), वैदिक मनोविज्ञान विशेषांक, सृष्टि संवत् विशेषांक, काल-अकाल मृत्यु विशेषांक, महर्षि दयानन्द के साहित्य की विषय सूची, अद्वैत व त्रैतवाद की मीमांसा, आर्य मान्यतायें, युगपुरुष योगेश्वर कृष्ण, मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम, योग मीमांसा, सत्यार्थ प्रकाश के संशोधनों की समीक्षा एवं सत्यार्थ प्रकाश के परोपकारिणी सभा के ३७ वें संस्करण में पाठ परिवर्तन आदि पर प्रकाशित विशेषांक

प्रमुख व महनीय कार्य हैं, जिनकी आर्यसमाज में आज भी मांग है। दयानन्द सन्देश मासिक पत्रिका द्वारा अपने ४८ वर्षां के जीवनकाल में सरिता व लोकालोक आदि में वेदविरुद्ध प्रकाशित होने वाले लेखों का सप्रमाण खण्डन भी किया जाता रहा है, जिसके उत्तर विरोधियों के पास नहीं थे। यह विरोधी अपने अज्ञान व स्वार्थ के कारण ही वेद विरोधी लेख व विचारों को प्रकाशित करते रहे हैं और बाद में निरुत्तर होने पर चुप हो जाते हैं। यही स्थिति महर्षि दयानन्द के प्रचारकाल में भी विरोधी व अन्य मतों के आचार्यों की हुआ करती थी। सन् १९८१ में लाला दीपचन्द आर्य की मृत्यु के पश्चात दयानन्द सन्देश पत्रिका उनके सुयोग्य पुत्र श्री धर्मपाल आर्य द्वारा निर्बाध रूप से समय पर प्रकाशित हो रही है, जससे सारा आर्य जगत लाभान्वित हो रहा है। **श्री धर्मपाल आर्य, गुरुकुल पद्धति से संस्कृत आदि भाषा में दीक्षित आर्य जगत के सुयोग्य विद्वान् , लेखक एवं नेता हैं।** उन्होंने अपने पिता लाला दीपचन्द आर्य की यश व कीर्ति को स्थिर रखा है, जिसके लिए वह प्रशंसा के पात्र हैं। लाला दीपचन्द आर्य की ही तरह आर्यजगत के विद्वान्, आर्य व वैदिक साहित्य के प्रमुख प्रकाशक श्री गोविन्दराम हासानन्द, इनके सुपुत्र श्री विजय कुमार व इनके सुपुत्र श्री अजय कुमार आर्य भी हैं, जिन्होंने अपने पूर्वजों का नाम उज्ज्वल रखते हुए आर्यसमाज को जीवन्त रखने एवं वेदों के प्रचार व प्रसार में स्वयं को समर्पित किया हुआ है। **हम लाला दीपचन्द आर्य, श्री गोविन्दराम , श्री विजय कुमार, श्री धर्मपाल आर्य श्री अजय कुमार आर्य को आर्यजगत की वन्दनीय ऐतिहासिक विभूतियाँ मानते हैं।**

ट्रस्ट ने वेदों पर अनुसंधान के क्षेत्र में अनेक कार्य किये हैं। स्वामी दयानन्द के यजुर्वेद एवं ऋग्वेद भाष्य पर आर्यजगत के दो प्रसिद्ध विद्वानों पं० सुदर्शन देव आचार्य एवं पं० राजवीर शास्त्री की भाष्य-भास्कर नामक विस्तृत टीकायें प्रकाशित कीं। विद्वत्जगत में इन दोनों ग्रन्थों की भूरि-भूरि प्रशंसा हुई। इसके अतिरिक्त मनुस्मृति को कुछ लोगों ने एक विवादास्पद ग्रन्थ बना दिया है। यह ऐसे बुद्धिजीवी हैं, जिन्होंने प्रायः मनुस्मृति को न पढ़ा ही है और न समझा है। मनुस्मृति वैदिक साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस सम्बन्ध में यह सर्वमान्य तथ्य है कि मनुस्मृति सहित हमारे बाल्मीकि रामायण, महाभारत आदि प्राचीन ग्रन्थों में कुछ स्वार्थी व लोभी लोगों ने समय-समय पर प्रक्षेप एवं परिवर्तन किये हैं, जिससे इन ग्रन्थों का वास्तविक स्वरूप ही विकृत हो गया है। वर्तमान में उपलब्ध मनुस्मृति में ऐसे बहुत से प्रसंग हैं, जो वेदविरुद्ध, प्रसंगविरुद्ध, अनावश्यक, गुण, कर्म, स्वभाव पर आधारित वर्णाश्रम-व्यवस्था के विपरीत हैं। लाला दीपचन्द आर्य जी ने मनुस्मृति पर वैदिक साहित्य के अध्येता पं० राजवीर शास्त्री और डॉ० सुरेन्द्र कुमार द्वारा अनुसंधान कराकर ऐसे प्रक्षेपों का पता लगवाया और इस सम्पूर्ण शोध कार्य को मनुस्मृति के ही नाम से प्रकाशित किया। आपने प्रक्षेपरहित मनुस्मृति को विशुद्ध मनुस्मृति के नाम से भी प्रकाशित किया। इस विशुद्ध मनुस्मृति का पहला संस्करण पं० राजवीर शास्त्री के नाम से प्रकाशित किया गया था और बाद के संस्करण डा० सुरेन्द्र कुमार के नाम से प्रकाशित किए जा रहे हैं। यह वेदप्रेमियों का सौभाग्य है कि आपके प्रयासों से आज मनुस्मृति अपने शुद्ध स्वरूप में उपलब्ध है। इस विशालकाय ग्रन्थ मनुस्मृति के समीक्षा भाग सहित एवं विशुद्ध मनुस्मृति नाम से दो पृथक संस्करणों के कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। लालाजी की इस देन के लिए सारा मानव समाज ऋणी रहेगा। कुछ वर्ष पूर्व जब जयपुर उच्च न्यायालय से कुछ व्यक्तियों द्वारा न्यायालय परिसर से मनु की मूर्ति को हटाने की मांग की और उसे हटाने का एक पक्षीय निर्णय लिया गया, तो लालाजी के विद्वान् सुपुत्र श्री धर्मपाल आर्य ने न्यायालय में एक याचिका प्रस्तुत कर स्थगनादेश प्राप्त किया। आपके इस प्रयास से महाराज मनु की यह मूर्ति अब भी न्यायालय परिसर

में विद्यमान है। इससे जुड़े मुद्दों पर श्री धर्मपाल आर्य ने एक पुस्तिका का प्रकाशन भी किया है।

वैदिक साहित्य के प्रचार हेतु लाला दीपचन्द आर्य ने एक वाहन खरीदा था, जिसको उन्होंने **''सत्यार्थ प्रकाश वाहन''** नाम दिया। इस वाहन के लिए एक प्रचारक और ड्राइवर नियुक्त कर उन्हें सत्यार्थ प्रकाश एवं अन्य कुछ वैदिक साहित्य से भर कर देश के सभी भागों में प्रचारार्थ भेजा गया। यह वाहन जहाँ भी जाता, वहाँ भीड़भाड़ वाले क्षेत्र में भजन व उपदेशों से सत्यार्थ प्रकाश सहित अन्य ग्रन्थों का भी अपूर्व प्रचार हुआ। सन् १९६९ में काशी में शास्त्रार्थ शताब्दी के अवसर पर आपने अपने व्यापक वैदिक ज्ञान से काशी के विद्वानों का स्वामी दयानन्द की मान्यताओं के विरुद्ध आक्षेपों का युक्तियुक्त समाधान किया, जिससे लोगों को आपके शास्त्रों के गहन स्वाध्याय एवं वैदुष्य का ज्ञान हुआ। इस शास्त्रार्थ में 'भागसाधनामिन्द्रयं' के आधार पर महर्षि दयानन्द द्वारा नाभि को इन्द्रिय मानने को आपने उचित सिद्ध किया था। **यहाँ आपने किसी भी व्यक्ति द्वारा वेदों से मूर्तिपूजा सिद्ध करने पर बड़ी धनराशि पुरुस्कार के रूप में देने की घोषणा की।** दिल्ली में प्रसिद्ध विद्वान् श्री सुरेन्द्र शर्मा एवं आर्य विद्वान् श्री वेदव्रत मीमांसक के बीच सम्वत् विषय पर हुए शास्त्रार्थ के आप संयोजक थे।

लालाजी में अनेक विशेषतायें थीं। उन्होंने कभी कहीं पर किसी विद्वान् को अपने सम्मान अथवा प्रशंसा में कुछ कहने या लिखने का अवसर नहीं दिया। यदि कभी किसी विद्वान् ने कहीं किसी लेख आदि में कुछ लिख दिया, उस लेख की आपकी प्रशंसा में लिखी गई पंक्तियों को आप निकलवा दिया करते थे तथा जो लेख दयानन्द सन्देश में छपता था, उसमें प्रशंसात्मक कोई पंक्ति नहीं होती थी । आपने अपने जीवनकाल में अपनी पत्रिका दयानन्द सन्देश तथा आपके न्यास से प्रकाशित होने वाली पुस्तकों में कभी अपना चित्र नहीं छपने दिया। **ज्ञान की पराकाष्ठा वैराग्य होता है और यह वैराग्य ही आपके जीवन व व्यक्तित्व में हम पाते हैं।** इस व्यक्तित्व के कारण ही आर्यजगत के दो शिरोमणि विद्वान् पं० राजवीर शास्त्री एवं पं० सुदर्शन देव आचार्य आपके साथ जुड़े रहे। इन विद्वानों का आपके साथ जुड़े रहना भी आपकी सफलता का एक मुख्य कारण रहा है। सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार में आपकी रुचि का प्रेरक उदाहरण तब मिला, जब दिल्ली के एक व्यक्ति द्वारा दूरभाष पर आपसे पूछताछ की गयी और इसके कुछ ही समय बाद आप उसकी इच्छित संख्या में सत्यार्थ प्रकाश की प्रतियाँ अपनी गाड़ी में रखकर उसके पास पहुँच गये और अपने व्यवसाय की चिन्ता न कर काफी समय तक उससे बातें करते रहे। इन पंक्तियों के लेखक को जून, १९७६ में आपने सत्यार्थ प्रकाश पढने की प्रेरणा करते हुए अनेक महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए थे। हमें याद है कि आपने अपनी दुकान पर पहुँचने पर हमसे पूर्ण आत्मीयता से बातचीत करते हुए कहा था कि सत्यार्थ प्रकाश का अध्ययन दूसरे समुल्लास से करना और पहले समुल्लास को कुछ समुल्लास पढ़ने के बाद या दसवें समुल्लास के बाद पढ़ना। तब हमने यह अनुभव किया था कि इस ऋषिभक्त में अनेक दैवीय गुण हैं, जो एक साधारण, सामान्य व अंकिचन व्यक्ति से भी इतनी आतमीयता व स्नेहपूर्वक बातें करता है और उसे पूरा सम्मान देता है। आज हमने अपने जीवन में जो सफलताएं प्राप्त की हैं, उनमें आपके साथ व्यतीत किये गये वह स्वर्णिम पल भी सम्मिलित हैं। इस प्रकार का आत्मीयतापूर्ण व्यवहार उसी दिन आपके घर पहुँचने पर आपकी धर्मपत्नी माता बालमती आर्या जी ने भी किया था। उन दिनों हम २४ वर्ष के युवक थे और आर्यसमाज में नये थे। इसके अनेक वर्षों बाद माता बालमती आार्या जी से आर्य वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम, ज्वालापुर, हरिद्वार में एक साथी सहित मिलने पर भी माताजी का व्यवहार अपनी माताजी के समान पाया था। आपने हमें प्रचुर मात्रा में

बादाम, काजू पिस्ते आदि खिलाये और जो बच गये थे, मना करने पर भी हमारी जेबों में भरवा दिया था, जिसे हम रास्ते में खाते रहे थे। यह संस्मरण भी हमारे जीवन का एक स्वर्णिम संस्मरण बन गया है। ऐसा ही व्यवहार श्री धर्मपाल आर्य भी करते हैं।

लालाजी आर्यसमाज का प्रचार बड़ी तेजी से कर रहे थे। सारा आर्यजगत आपकी ऋषिभक्ति पर मुग्ध था। महर्षि दयानन्द के आप ऐसे दिवाने थे, जिसकी उपमा देने मे हमें कठिनाई हो रही है। माता बालमती आर्या जी ने जून, १९७६ में एक संस्मरण सुनाते हुए बताया था कि लालाजी जब स्नान करने जाते हैं, तो कुछ ही क्षणों, सेकण्ड्स या मिनटों में स्नान कर बाहर आ जाते हैं अर्थात् बहुत ही कम समय स्नान करने में लगाते हैं। ऐसा ही विद्वानों के साथ जब वह उनसे घर पर वार्तालाप कर रहे होते थे, तो उनका भोजन का समय भी निकल जाता था और वह विचार-विनिमय में मग्न रहा करते थे। उनका निवास स्थान २ एफ कमलानगर, दिल्ली आर्यजगत के प्रमुख व शीर्षस्थ विद्वानों का तीर्थ- स्थल सा बन गया था, जहाँ लालाजी से मिलने सभी पहुँचते थे और लालाजी सबका आतिथ्य व सत्कार भोजन व निवास आदि की सुविधा प्रदान करते थे। अपने गुरू स्वामी दयानन्द की तरह आप का जीवन लगभग ६२ वर्ष का रहा। स्वामी दयानन्द जी का जीवन ५९ वर्ष तक का ही रहा। **इस अल्पावधि में आपने जो कार्य किये, उनसे आपका स्थान वैदिकधर्म एवं आर्य समाज के इतिहास में अमर हो गया है।** हम जब आपके जीवन की घटनाओं पर विचार करते हैं, तो मन व आत्मा में एक विशेष स्फूर्ति उत्पन्न हो जाती है और कुछ रचनात्मक व सकारात्मक कार्य करने की प्रेरणा मिलती है। २८ दिसम्बर, सन् १९८१ को रात्रि नौ बजे दिल्ली में पूर्व प्रारब्ध के अनुसार जाति, आयु व भोगों को पूरा कर आपने अपने जीवन व आत्मा का उत्सर्ग किया। **आपकी मृत्यु पर आर्यजगत के प्रसिद्ध विद्वान् व आपके सहयोगी पं० राजवीर शास्त्री ने श्रद्धांजलि देते हुए आपको महात्मा दीपचन्द आर्य के नाम से स्मरण किया।** वस्तुतः आप महात्मा ही थे, जो अज्ञानी व अन्धविश्वासी लोगों को धार्मिक दृष्टि से वेदों के ज्ञान से सम्पत्तिशाली बनाने की अभिलाषा रखते थे और इसके लिए प्राणपण से तप कर रहे थे। आर्यजगत के एक अन्य प्रसिद्ध विद्वान् पं० वीरसेन वेदश्रमी ने अपनी श्रद्धांजलि में आपको **आर्ष ग्रन्थों का दिवाना बताया। डा०भवानीलाल भारतीय ने लाला दीपचन्द आर्य की विनयशीलता, अतिथिसत्कार, गुणग्राहकता एवं विद्वानों के सम्मान को आदर्श एवं अनुकरणीय बताया। जयपुर के डा० सतयदेव आर्य के अनुसार लालाजी अत्यन्त सरल, सौम्य व स्नेहिल स्वभाव के पुण्यात्मा एवं वैदिक सिद्धांतों में अटूट आस्था रखने वाले सच्चे आर्य थे।** ***आर्यजगत के शीर्षस्थ विद्वान् पं० युधिष्ठिर मीमांसक ने अपनी श्रद्धांजलि में कहा कि लालाजी ने अपनी चंचला लक्ष्मी को श्री एवं यशस्विनी रूप में बदलने का जो सत्कार्य किया है, उससे वह भी उन्हें सदा अमर रखेगी।*** हम इन सभी विद्वानों की सम्मति में अपनी सम्मति शामिल कर महात्मा दीपचन्द आर्य व उनकी धर्मपत्नी माता बालमती आर्या को अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। हम यह भी अनुभव करते हैं कि यदि लाला दीपचन्द आर्य कुछ वर्ष और जीवित रहते, तो आर्यसमाज व वैदिकधर्म की और अधिक सेवा करते । ऋग्वेद-भाष्य-भास्कर का कार्य पूरा कराते और आज यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर सहित सभी ग्रन्थ भव्य साज- सज्जा व शुद्ध मुद्रण के साथ आर्य पाठकों को सुलभ होते। अनेक नये अनुसंधानपूर्ण व उपयोगी ग्रन्थ भी अस्तित्व में आते, जिनसे विश्व में वेदों का महत्त्व और अधिक व्यापक व प्रभावोत्पादक होता। उनका असमय परलोकगमन हो जाने से वैदिक धर्म, आर्यसमाज, देश एवं मानवता की अपूरणीय क्षति हुई है।

❑❑

आर./आर. नं० १६३३०/६७
Post in Delhi R.M.S
०५-११/०७/२०१६
भार- ४० ग्राम

जुलाई 2016

रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2015-17
लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१५-१७
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/2015-17

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

● प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु.	प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
● विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु.	प्रचारार्थ 50 रु.	
● स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30÷8	मुद्रित मूल्य 150 रु.		प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

10 या 10 से अधिक प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6
Ph. :011-43781191, 09650622778
E-mail : aspt.india@gmail.com

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में.........................
ग्राम.........................
डा0.........................
जिला.........................

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक धर्मपाल आर्य, स्वामित्व आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४२७, गली मन्दिर वाली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-११०००६ से प्रकाशित एवं तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीता राम, दिल्ली-११०००६ से मुद्रित।